वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६१ अंक १२
दिसम्बर २०२३

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६१
अंक १२

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

अग्रहायण, सम्वत् २०८०

दिसम्बर, २०२३

अनुक्रमणिका

* मानव-देहरूपी मन्दिर सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है : विवेकानन्द ६०६
* (बच्चों का आंगन) असम्भव को सम्भव किया (श्रीमती मिताली सिंह) ६१२
* लोकमान्य तिलक से विवेकानन्द के गीतोक्त कर्मयोग पर वार्तालाप (डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी) ६१३
* जो अन्नपूर्णा हैं, वे ही माँ सारदा हैं (चिन्मयी प्रसन्न घोष) ६१५
* गुरु-मन्त्र में महान शक्ति है (स्वामी सत्यरूपानन्द) ६१८
* मनःसूक्तम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ६१९
* (युवा प्रांगण) जीवन में अनुशासन की आवश्यकता (स्वामी गुणदानन्द) ६२०
* माँ सारदा कुटीर (स्वामी ओजोमयानन्द) ६२२
* प्रेममय स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज (स्वामी आत्मस्थानन्द) ६२६
* राम-नाम का अमृत (मैथिलीशरण 'भाईजी') ६२८
* क्रोध से शान्ति की ओर (स्वामी ओजोमयानन्द) ६३०
* दान करते रहो, एक दिन परमहंस भी आयेंगे (प्रभुदत्त ब्रह्मचारी) ६३९
* (कविता) गीता जीवन का आधार सखे (व्यग्र पाण्डेय) ६३६
* (कविता) परम भाव की सदा स्वामिनी (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ६४०
* एक नाई और एक भगवत-भक्त (स्वामी स्तवप्रियानन्द) ६४२
* वार्षिक अनुक्रमणिका – २०२३ ६४४

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ६०५
पुरखों की थाती ६०५
सम्पादकीय ६०७
रामराज्य का स्वरूप ६०९
गीतातत्त्व-चिन्तन ६२३
प्रश्नोपनिषद् ६२७
श्रीरामकृष्ण-गीता ६३६
सारगाछी की स्मृतियाँ ६३७
साधुओं के पावन प्रसंग ६४१
समाचार और सूचनाएँ ६४३

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से मँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ का चित्र माँ सारदा कुटीर, वृन्दावन का है। विस्तृत जानकारी के लिए पृष्ठ संख्या ६२२ देखें।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री सुरेन्द्रशंकर उपाध्याय	३,५००/-
श्री सुरेशचन्द्र शर्मा, जोधपुर (राज.)	२,१००/-
श्री सिद्धेश्वरशरण वार्ष्णेय	१,१००/-
श्री अनुराग प्रसाद, गजियाबाद (उ.प्र.)	३,४०१/-
श्री रविशंकर सिंह, छपरा (बिहार)	५१,०००/-
श्री देवीशरण गुप्त, जोधपुर (राज.)	१,१००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६१ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें।

– व्यवस्थापक

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

२१	स्वामी प्रेमानन्द
२४	क्रिसमस ईव
२८	स्वामी सारदानन्द
९, २३	एकादशी

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६१ **दिसम्बर २०२३** **अंक १२**

श्रीमद्भगवद्गीता ध्यानम्

ॐ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम्।
अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीं
अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम्।।

– भगवान नारायण के द्वारा महाभारत युद्ध में अर्जुन को सम्बोधित करके भगवद्गीता को कहा गया, अर्जुन को इसका बोध कराया गया, जिसे प्राचीन ऋषि व्यासजी ने महाभारत में संकलित किया, हे अमृतवर्षणकारिणी, भव-बन्धनोच्छेदिनी, पुनर्जन्म को दूर करनेवाली, अठारह अध्यायोंवाली हे भगवती भगवद्गीते ! मैं आपका सतत ध्यान करता हूँ।

पुरखों की थाती

नात्युच्चशिखरो मेरुर्नातिनीचं रसातलम्।
व्यवसायद्वितीयानां नात्यपारो महोदधिः।।८१४।।

– उद्यमी या परिश्रमी व्यक्ति के लिए न तो मेरु पर्वत की चोटी अधिक ऊँची रह जाती है, न पाताल बहुत गहरा लगता है और न महासागर ही अपार रह जाता है।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्यमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।।८१५।।
(मनु.)

– जैसे गाय को खिलाया हुआ चारा तत्काल ही दूध के रूप में फलदायी नहीं होता है, वैसे ही व्यक्ति द्वारा किये गये पाप धीरे-धीरे फलदायी होकर अन्ततः पापी का समूल नाश कर देते हैं।

यत्किञ्चित् कुरुते कर्म पुरुषः साध्वसाधु वा।
सर्वं नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते।।८१६।।

– व्यक्ति के द्वारा भला या बुरा जो भी कर्म होता है, उन सभी को परमात्मा में समर्पित कर देने से, वह कर्म करता हुआ भी उसके फल में लिप्त नहीं होता।

मानव-देहरूपी मन्दिर सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है : विवेकानन्द

सब प्रकार के शरीरों में मानव-शरीर ही श्रेष्ठ हैं, मनुष्य ही श्रेष्ठ जीव है। मनुष्य सब प्रकार के प्राणियों से, यहाँ तक कि देव आदि से भी श्रेष्ठ है। मनुष्य से श्रेष्ठ कोई और नहीं। देवताओं को भी ज्ञान-प्राप्ति के लिए मनुष्य-देह धारण करनी पड़ती है। एकमात्र मनुष्य ही ज्ञान-लाभ का अधिकारी है, यहाँ तक कि देवता भी नहीं। यहूदी और मुसलमानों के मतानुसार ईश्वर ने देवदूत और अन्य समुदाय की सृष्टि करने के बाद मनुष्य की सृष्टि की। मनुष्य के सृजन के बाद ईश्वर ने देवदूतों से मनुष्य को प्रणाम और अभिनन्दन कर आने के लिए कहा। इबलीस को छोड़कर बाकी सबने ऐसा किया। अतएव ईश्वर ने इबलीस को अभिशाप दे दिया। इससे वह शैतान बन गया। इस रूपक के पीछे यह महान सत्य निहित है कि संसार में मनुष्य-जन्म ही अन्य सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

आश्चर्य की बात है कि सभी धर्म एक स्वर से घोषणा करते हैं कि मनुष्य पहले निष्पाप और पवित्र था, पर आज उसकी अवनति हो गयी है, इस भाव को फिर वे रूपक की भाषा में या दर्शन की स्पष्ट भाषा में अथवा कविता की सुन्दर भाषा में क्यों न प्रकाशित करें, पर वे सब के सब अवश्य इस एक तत्त्व की घोषणा करते हैं।

अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप एक ही है, वह अनन्त और सर्वव्यापी है और यह प्रातिभासिक जीव मनुष्य के इस वास्तविक स्वरूप का एक सीमाबद्ध भाव मात्र है। इसी अर्थ में पूर्वोक्त पौराणिक तत्त्व भी सत्य हो सकते हैं कि प्रातिभासिक जीव, चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो, मनुष्य के इस अतीन्द्रिय, प्रकृत स्वरूप का धुँधला प्रतिबिम्ब मात्र है। अतएव मनुष्य का प्रकृत स्वरूप – आत्मा – कार्य-कारण से अतीत होने के कारण, देश-काल से अतीत होने के कारण, अवश्य मुक्त स्वभाव है। वह कभी बद्ध नहीं थी, न ही बद्ध हो सकती थी। यह प्रातिभासिक जीव, यह प्रतिबिम्ब, देश-काल-निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारण बद्ध है। अथवा हमारे कुछ दार्शनिकों की भाषा में, प्रतीत होता है, मानो वह बद्ध हो गयी है, पर वास्तव में वह बद्ध नहीं है।'

सम्पूर्ण शास्त्र एवं विज्ञान मनुष्य के रूप में प्रकट होनेवाली इस आत्मा की महिमा की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह समस्त ईश्वरों में श्रेष्ठ है, एकमात्र वही ईश्वर है, जिसकी सत्ता सदैव थी, सदैव है और सदैव रहेगी।

ईश्वरोपासना करने के लिए प्रतिमा आवश्यक है, तो उससे कहीं श्रेष्ठ मानव-प्रतिमा ही विद्यमान है। यदि ईश्वरोपासना के लिए मन्दिर-निर्माण करना चाहते हो, तो करो, किन्तु सोच लो कि उससे भी उच्चतर, उससे भी महान मानव-देह रूपी मन्दिर तो पहले से ही विद्यमान है।

जीवित ईश्वर तुम लोगों के भीतर रहते हैं, तब भी तुम मन्दिर, गिरजाघर आदि बनाते हो और सब प्रकार की काल्पनिक झूठी चीजों में, विश्वास करते हो। मनुष्य-देह में स्थिति मानव-आत्मा ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है। पशु भी भगवान् के मन्दिर हैं, किन्तु मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है – ताजमहल जैसा। यदि मैं उसकी उपासना नहीं कर सका, तो अन्य किसी भी मन्दिर से कुछ भी उपकार नहीं होगा। जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य-देहरूपी मन्दिर में उपविष्ट ईश्वर की उपलब्धि कर सकूँगा, जिस क्षण मैं प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख भक्तिभाव से खड़ा हो सकूँगा और वास्तव में उनमें ईश्वर देख सकूँगा, जिस क्षण मेरे अन्दर यह भाव आ जायेगा, उसी क्षण मैं सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाऊँगा – बाँधनेवाले पदार्थ हट जायेंगे और मैं मुक्त हो जाऊँगा।

यह आदर्श अवस्था वह है, जिसमें मनुष्य का अहंभाव पूर्णतया नष्ट हो जाता है, उसका स्वत्व-भाव लुप्त हो जाता है, जब उसके लिए ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसे वह 'मैं' और मेरी कह सके, जब वह पूर्णतया आत्म-विसर्जन कर देता है, मानो अपनी आहुति दे देता है। इस प्रकार अवस्थापन्न व्यक्ति के अन्तर में स्वयं ईश्वर निवास करता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की अहं-वासना पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी है, एकदम निर्मल हो गयी है। यह है आदर्श व्यक्ति।

सम्पादकीय

दैनिक जीवन में गीता

श्रीमद्भगवद्गीता के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''गीता के समान भाष्य कभी नहीं बना है और न बनेगा। श्रुति या उपनिषदों का तात्पर्य समझना बड़ा कठिन है, क्योंकि विभिन्न भाष्यकारों ने अपने-अपने मतानुसार उनकी व्याख्या करने की चेष्टा की है। अन्त में जो स्वयं श्रुति के प्रेरक हैं, उन्हीं भगवान ने आविर्भूत होकर गीता के प्रचारक रूप से श्रुति का जैसा अर्थ समझाया, आज भारत को उसी व्याख्या प्रणाली की आवश्यकता है, सारे समाज को उसी की आवश्यकता है।''[१]

वास्तव में भगवद्गीता भारतीय संस्कृति और संस्कृत वाङ्मय का ऐसा महान ग्रन्थ है, जिसकी आवश्यकता अपने जीवन में उत्कर्ष चाहनेवाले सभी लोगों को है। जो भी व्यक्ति अपने जीवन को संतुलित, प्रखर, तेजस्वी और श्रेष्ठ बनाना चाहता है, उसे माँ भगवती गीता की शरण लेनी चाहिये, उसे साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से नि:सृत इस दिव्य वाणी पर श्रद्धा करके इसका अपने जीवन में आचरण करना चाहिये। इसलिये स्वामीजी कहते हैं कि इसकी सारे समाज को आवश्यकता है।

भगवद्गीता मानव-जीवन का प्राण है। गीता मानव के स्नायुओं में प्रवाहित होनेवाला स्पन्दन है। भगवद्गीता नित्य प्रतिदिन प्रतिक्षण आचरणीय, चिन्तनीय, मननीय और ध्यातव्य है। गीता के उपदेशों को जीवन में आचरण करने पर मानव स्वयं संतुलित, विवेकी, आत्मविश्वासी और शक्तिशाली बोध करता है। गीता केवल महाभारत के युद्ध-क्षेत्र में ही अर्जुन को युद्ध हेतु प्रेरित करनेवाली नहीं है, बल्कि मानव-जीवन रूपी रण-क्षेत्र में भी प्रतिपल सहायक है। जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण युद्ध-भूमि में प्रतिपल अर्जुन की सहायता और निर्देशन कर रहे हैं, वैसे ही गीता के उपदेश आज भी मानव-जीवन में प्रतिपल मार्गदर्शन कर उसे सही दिशा-निर्देश कर रहे हैं। गीता सुख-दुख में, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में मानव को सन्तुलित रखकर उसके जीवन को आनन्दमय बनाती है।

वर्तमान मानव के दैनिक जीवन की समस्याएँ और गीता के उपदेशों से समाधान

आज आधुनिक मानव विभिन्न प्रकार के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक त्रितापों से दग्ध होकर जीवन में बड़े गलत निर्णय लेता है और अन्त में अपने जीवन को ही समाप्त कर लेता है, ऐसी घटनाएँ प्रतिदिन समाचार पत्रों और मीडिया के द्वारा ज्ञात होती है। ऐसा क्यों हो रहा है? बच्चे, वयस्क, वृद्ध, शिक्षित, अशिक्षित, कलाकार आदि क्यों हताश-निराश होकर आत्महत्याएँ कर लेते हैं। क्यों एक छोटी-सी समस्या से, छोटी-सी बात से, एक छोटी-सी डाँट-फटकार से किशोर, युवा और वयस्क उद्विग्न हो जाते हैं, वे सहन नहीं कर पाते और अपने को असहाय पाकर जीवन से निराश हो जाते हैं? आज ये समस्यायें अधिक बढ़ रही हैं। देश की सम्पत्तिरूपी छात्र-छात्राओं, युवक-युवतियों के इस समस्या का समाधान हमें तत्काल करना होगा, जिससे हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा हो सके।

इतिहास साक्षी है, आज तक जो भी व्यक्ति माउन्ट एवरेस्ट और जीवन-उत्कर्ष के शिखर पर अपना कीर्ति-ध्वज लहराया है, उसका जीवन प्रतिपल संघर्षों और खतरों से भरा रहा है। पर्वतारोही मृत्यु की विभीषिकाओं के बीच अपने विजयोल्लास की आशा के विराट समारोह की कल्पना का आनन्द लिये हुये चलता है। मानव को भी इस प्रकार जीवन की समस्याओं में भी लक्ष्य के प्रति दृढ़ संकल्पित होकर परम आनन्द की प्राप्ति की आशा और तज्जनित आनन्द से पूर्ण होकर अग्रसर होना होगा।

इसलिये महान सम्भावनाओं एवं उत्कर्षों का साम्राज्य रूपी मानव-जीवन समस्याओं, द्वन्द्वों एवं मृत्यु की विभीषिका से कभी रिक्त नहीं हो सकता। अर्जुन महाभारत युद्ध में विजय-प्राप्ति की माला से सुशोभित हुये, किन्तु उनकी स्थिति पर थोड़ा विचार करें –

अर्जुन सामने कई महारथियों द्वारा प्रक्षेपित प्राणघाती शस्त्रास्त्रों द्वारा स्वयं को बचाते हुये उन पर वार कर रहे हैं, शरीर में लगे घावों के दर्द को सहन करते हुये, अपने पुत्र-स्वजनों की मृत्यु जैसी घोर पीड़ा को हृदय में सहन करते हुये भी रण-कौशल के साथ, उत्साह, विश्वास और विजय की आस से शत्रु से युद्ध किये जा रहे हैं। अर्जुन का यह वैशिष्ट्य यदि मानव अपने जीवन में भी अपनाये, तो उसे भी जीवन-युद्ध में विजय अवश्य मिलेगी।

गीता मानव को हतोत्साहित न कर उसमें आत्मविश्वास जगाती है। भगवान श्रीकृष्ण ने हतोत्साह, निराशा के गर्त में डूबे अर्जुन को प्रोत्साहित करते हुये कहा – **क्लैव्यं मा स्मगमः पार्थ न...।** अर्जुन ! कापुरुषता, कायरता छोड़ो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। उन्होंने अर्जुन को उनकी शक्ति का स्मरण कराते हुये कहा, तुममें वह आत्मा निवास करती है, जो अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अकाट्य और सर्वशक्तिशाली है, तुम दुर्बल नहीं हो, तुम धर्ममार्ग पर हो, इसलिये तुम्हें किसी प्रकार भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। उठो और युद्ध करो।

मानव में निहित परमात्म-शक्ति अदम्य, सर्वशक्तिशाली और दिव्य है। उसे किसी भी प्रकार की समस्याओं और द्वन्द्वों से घबराकर निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उसे अर्जुन की भाँति निर्भय, आत्मविश्वास और उत्साह के साथ उनका सामना करना है और उन पर विजय प्राप्त कर आनन्दोल्लसित जीवन का पर्व मनाना है।

जीवन में किसी भी क्षेत्र में सफलता के लिये मानसिक एकाग्रता, मानसिक सन्तुलन, सद्बुद्धि, सन्मार्ग-दर्शन, सहिष्णुता की आवश्यकता होती है। गीता हमें मन के नियन्त्रण का मार्ग बताती है – **अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।** चंचल मन को बार-बार लक्ष्य में केन्द्रित करना, लक्ष्य के अतिरिक्त इधर-उधर भटकने से रोकना, लक्ष्यातिरिक्त वस्तुओं की उपेक्षा करने से मन नियन्त्रित होता है। नियन्त्रित मन धीरे-धीरे सन्तुलित होने लगता है। सन्तुलित मन समस्याओं, द्वन्द्वों और संघर्षों से विचलित नहीं होता। असन्तुलित मन, चिड़-चिड़ा मन घर और समाज में कलह, अशान्ति का कारण बनता है, जो मानव जीवन का काम्य नहीं है। इस प्रकार गीता हमारे मन को नियन्त्रित, सन्तुलित करने का मार्गदर्शन कर हमारे जीवन के प्रगति पथ को प्रशस्त करती है।

समाज में लोभ भ्रष्टाचार का सूत्र बन गया है। लोभ के कारण ही व्यक्ति लूट-पाट, चोरी-डकैती, घूसखोरी, रंगदारी, अपहरणादि की घटनाओं को करता है और अन्त में बन्दी बनकर जेल की शृंखलाओं में कष्ट भोगता रहता है। गीता दूसरे की किसी भी वस्तु को लेने को अस्तेय मानती है। इसलिये हम किसी दूसरे के छोटे-से अंश को भी जाने-अनजाने में न लें। किसी भी व्यक्ति, वस्तु से मोह, आसक्ति दुख को जन्म देता है। गीता कहती है, अपने जीवन के उत्थान में सहयोगी आवश्यक वस्तुओं का यथायोग्य उपयोग कर उसे छोड़ दो, उसमें आसक्त मत होओ, क्योंकि आसक्ति दुख का मूल है। काम-क्रोध-लोभ नरक के द्वार और आत्मनाशक हैं। अत: इन तीनों का त्याग कर दो। इनसे मुक्त पुरुष आत्मकल्याण का आचरण करते हुये परम गति को प्राप्त करता है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।[२]

दैनिक व्यवहार में अनुद्वेगकर, सत्य और प्रिय वाणी से सभी लोग मुग्ध हो जाते हैं। गीता का उपदेश है – **अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।** सन्तुलित, स्वस्थ और दुखहारी जीवन के लिये **'युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु...'** – यथायोग्य आहार-विहार, कर्मचेष्टा, शयन और जागरण का संदेश गीता देती है। सभी प्राणियों में भगवान को देखते हुये नित्य सबसे प्रेम करने से व्यक्ति सामाजिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त होता है। क्योंकि भगवान ने कहा है – **सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।**

स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज अपनी पुस्तक 'भगवद्गीता का सार्वजनीन सन्देश' में लिखते हैं – ''जनक एक राज्य के राजा थे, किन्तु वे ब्रह्मज्ञानी भी थे। यहाँ तक कि युवा ऋषि शुक को भी आध्यात्मिक शिक्षा के लिये उनके पिता ने राजा जनक के पास भेजा था। अत: वही उदाहरण श्रीकृष्ण यहाँ पर दे रहे हैं – 'ऐसा मत सोचो कि जब आप एकान्त में अथवा किसी वन में हों, तभी आप अनासक्ति का अभ्यास कर सकते हैं।' आप इसका अभ्यास अपने आस-पास सांसारिक उत्तरदायित्वों के बीच भी कर सकते हैं, यही वीरता है। लेकिन उस समय अनासक्ति का अभ्यास, जबकि आपको कोई भी विचलित करनेवाला नहीं है, वीरता नहीं है।''[३]

सन्दर्भ सूत्र – १. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ५, पृष्ठ १५५ २. गीता, १६/२१-२२ ३. भगवद्गीता का सार्वजनीन सन्देश, भाग १, पृ.२५१

रामराज्य का स्वरूप (१०/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

अब यदि यह प्रश्न किया जाय कि भगवान राम ने कहा कि पिताजी ने मुझे जंगल का राज्य दिया है, तो उस राज्य का श्रीगणेश कहाँ से होगा? इसे मैं ऐसे कहूँगा कि भगवान श्रीराघवेन्द्र ने सुमन्तजी के साथ रथ पर बैठकर, जहाँ तक उन्होंने रथ पर यात्रा की, वहाँ तक तो महाराज दशरथ का राज्य है। जब भगवान राम शृंगवेरपुर पहुँचे, तो वहीं पर उन्होंने अयोध्या के रथ का परित्याग कर दिया और उसके पश्चात् भगवान राम ने रथ की यात्रा नहीं की, यहीं से भगवान राम ने वन की ओर प्रस्थान किया। यही अयोध्या के राज्य और वन के राज्य की सीमा है। इस राज्य की सीमा पर जो व्यक्ति भगवान राम से सबसे पहले मिला, वह कौन है? वह सबसे पहला व्यक्ति केवट है। गंगा ही रामराज्य की सीमा है। इसका सांकेतिक अभिप्राय है कि गंगा भक्ति की धारा है –

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। १/१/८

धर्मराज्य की सीमा वहाँ तक थी, जहाँ से भक्ति राज्य की सीमा प्रारम्भ होती है। रामराज्य की सीमा रेखा मानो भक्ति की गंगा है और रामराज्य का प्रथम नागरिक कौन है? रामराज्य का प्रथम नागरिक केवट है। आगे चलकर रामराज्य का जो वर्णन किया गया, उसमें रामराज्य के नागरिकों का जो वर्णन है, उसका सबसे पहले आप रामायण में दर्शन करेंगे, तो वह है केवट। केवट के प्रसंग में रामराज्य के उस प्रथम नागरिक की स्थिति आप देखेंगे। रामराज्य के प्रसंग में कहा गया –

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। ७/२०/६

न तो कोई दुखी था, न दरिद्र था, न कोई दीन था। सबसे पहले वह कौन व्यक्ति है, जिसने दुख-दरिद्रता और दीनता से मुक्ति पा लिया? वह व्यक्ति आपको केवट के रूप में दिखाई देगा। कैसे? केवट ने जब भगवान राम को गंगा पार उतार दिया और नौका से उतर कर भगवान के चरणों में प्रणाम किया –

केवट उतरि दंडवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा।। २/१०१/१

प्रभु संकोच में पड़ गये। केवट ने मुझे पार उतारा है, मैंने इसको कुछ नहीं दिया। श्री किशोरीजी ने प्रभु के संकोच को समझ लिया और उन्होंने अपने हाथ से मुद्रिका निकाली और प्रभु के कर कमलों में उन्होंने दे दिया। प्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक वह मुद्रिका केवट को देते हुए कहा –

कहेउ कृपाल लेहि उतराई। २/१०१/४

भगवान राम के शब्दों को बड़े संतुलित अर्थों में लिया जाना चाहिए। जब किसी व्यक्ति के परिश्रम के बदले में कोई वस्तु दीया जाये, तो वह पुरस्कार है। केवट ने जो पार उतारा, उसके बदले में उतराई तो वही हो सकती है, जो उस समय परम्परा में दी जाती थी। भगवान श्रीराम ने श्रीसीताजी की जो दिव्य मुद्रिका देनी चाही, वह दोनों अर्थों में भौतिक दृष्टि से भी और आध्यात्मिक दृष्टि से भी, उस मुद्रिका के मूल्य की तुलना नहीं हो सकती। स्वर्ण और दिव्य मणियों से बनी हुई वह मुद्रिका है, उसकी अगर भौतिक अर्थों में कल्पना करें, तो मूल्य कितना होगा? कितनी मूल्यवान वह मुद्रिका रही होगी? अगर आध्यात्मिक अर्थों में विचार करके देखें, तो श्रीसीताजी मूर्तिमती भक्ति देवी हैं और उस मुद्रिका में स्वर्ण और मणि ही नहीं है, राम-नाम भी अंकित है। राम-नाम की मुद्रिका श्रीसीताजी अपने करकमलों में धारण करती हैं। श्रीसीताजी ने राम-नाम की मुद्रिका दी, तो उसका आध्यात्मिक अभिप्राय यह हुआ, मानो इससे बढ़कर और

क्या उतराई दी जा सकती है, जहाँ पर स्वयं भक्ति देवी ने भगवान के नाम की मुद्रिका दी है। भगवान का नाम तो भगवान से भी अधिक महिमामय है –

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।। १/२५/८

ऐसे नाम को भक्ति देवी स्वयं प्रसन्न होकर किसी को प्रदान करें, तो इससे बढ़कर कोई वस्तु, इससे बढ़कर भक्ति देवी की अनुकम्पा और क्या हो सकती है ! पर अद्‌भुत बात है, केवट ने उस समय भगवान श्रीराम के चरणों को पकड़ लिया। भगवान राम ने उसके लिए पुरस्कार शब्द का प्रयोग नहीं किया। भगवान राम ने कहा –

कहेउ कृपाल लेहि उतराई।

प्रभु ने कहा कि उतराई लो, मैं तुम्हारे परिश्रम के बदले में पारिश्रमिक दे रहा हूँ। भगवान श्रीराम से अगर कोई पूछ दे कि महाराज, उतराई में इतना पारिश्रमिक दिया जाता है क्या? अगर आप इतना भाव बढ़ा देंगे, तो बेचारे दूसरे उतरने वालों की क्या दशा होगी? वे कहाँ से इतनी उतराई चुका पायेंगे? भगवान ने कहा कि भाई, पार उतराई का ही महत्त्व नहीं है, केवट ने मुझे पार उतारा है, इसका महत्व है। क्या बोले, संसार के जीवों को मैं भी पार उतारता हूँ और उनसे बड़ी-बड़ी साधनाएँ लेता हूँ और सबको पार उतारने वाले को जिसने पार उतार दिया, उससे बढ़कर महान अब दूसरा कौन होगा? इसलिए इससे बड़ी दूसरी कोई बात नहीं हो सकती है। केवट ने मुझे भी पार कर दिया है, इसलिए मैं उसे पारिश्रमिक मात्र दे रहा हूँ, पुरस्कार नहीं दे रहा हूँ। लेकिन केवट ने चरणों को पकड़कर जो वाक्य कहा, वह केवट का वाक्य था? केवट ने तुरन्त कहा और वही रामराज्य का सूत्र है। केवट ने भगवान राम से कहा –

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा।। २/१०१/५

प्रभु, आज मैंने क्या नहीं पा लिया ! मेरे जीवन में न तो दोष रह गया, न दुख रह गया, न दरिद्रता रह गई। इससे मैं मुक्त हो गया। इन तीनों से मुक्ति ही रामराज्य है और केवट ने इसी का अनुभव किया। केवट का अभिप्राय क्या था? केवट ने कहा, प्रभु समाज की दृष्टि से मुझसे बढ़कर कोई दीन नहीं, मुझसे बढ़कर कोई दोषी नहीं और सारा समाज तिरस्कार की दृष्टि से जिसको देखता हो, सारे समाज की दृष्टि में जो हीन हो, उससे बढ़कर दुखी भला और कौन होगा? तो ऐसी स्थिति में दोष, दुख और दीनता; ये तीनों वस्तुएँ मुझमें विद्यमान थीं। लेकिन आपने तो इन तीनों का निराकरण कर दिया। क्या? बोले आप गंगा के किनारे आकर खड़े हुए और अगर आप मुझसे यह कहते हैं कि केवट तू तो बड़ा दीन है, दरिद्र है, तुझे जो चाहिए वह माँग ले, तो मैं सोचता कि मैं तो दीन हूँ, माँग लूँ। लेकिन आप जब गंगा के किनारे आकर खड़े हुए और आपने मुझसे यह नहीं कहा कि केवट, तू मुझसे जो चाहे वह माँग ले, बल्कि आपने ही मुझसे नाव माँगा, तो एक क्षण में मेरी दीनता न जाने कहाँ चली गई। क्यों? मैंने सोचा कि संसार को देनेवाला जब मुझसे माँग रहा है, तो मुझसे बड़ा कोई नहीं है। प्रभु, आपने तो एक वाक्य में मेरी दीनता दूर कर दी। दूसरा? आपने हमारे जीवन का दुख भी दूर कर दिया। कैसे? केवट बोला, आपके सामने मैंने आड़ी-टेढ़ी भाषा का प्रयोग किया और उस समय आप बड़ी गम्भीर मुद्रा में गंगा के किनारे आए हुए थे। सुमन्तजी को विदा करने की पीड़ा, घोड़ों से अलग होने की पीड़ा लिए हुए आप गंगा के किनारे खड़े हुए थे, लेकिन जिस समय मैंने आड़ी-टेढ़ी भाषा का प्रयोग किया और आप खुलकर हँसे –

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन।।
२/१००/०

केवट ने कहा – महाराज, मेरे जीवन में दुख का प्रश्न ही कहाँ रह गया? क्यों? बोले – आप आनन्द-सिन्धु के केन्द्र हैं और आपको भी मैंने सुख दे दिया, तो मैं ही तो सबसे बड़ा सुख का धनी सिद्ध हुआ। आपको हँसा दिया, आपका दुख दूर कर दिया। बस, मेरे जीवन में दुख का लेश नहीं रह गया। तीसरा ! समाज में लोग मुझे अस्पृश्य समझते थे। लोग समझते थे कि यह दोषों से भरा हुआ है। पर प्रभु आज आपने वह भी मेरे जीवन से पूरी तरह दूर कर दिया। जब केवट ने भगवान श्रीराम से यह कहा कि यदि आप पार जाना चाहते हैं, तो चरण धुलाइए और चरण धुलाना चाहते हैं, तो आप अपने मुँह से कहें कि मेरा चरण धोओ। तो भगवान से ऐसा कहने का अभिप्राय क्या है? देखिए, हम चेष्टा यह करते हैं कि किसी व्यक्ति के मन में यह बात न आवे कि उसके बिना हमारा काम नहीं चलेगा।

क्योंकि ऐसा लगता है, किसी व्यक्ति को यह भ्रम हो जाये कि मेरे बिना इसका काम नहीं चलेगा, तो वह सिर पर चढ़ जाता है। इसलिए बुद्धिमान और नीतिज्ञ व्यक्ति सावधान रहता है कि दूसरे को उतना ही महत्त्व दिया जाये, जिससे उसका मस्तिष्क विकृत न हो जाये। पर भगवान श्रीराघवेन्द्र की जो शैली है, वह भिन्न प्रकार की है। समाज ने केवट को दबाकर रखा, केवट को नीच, हीन बनाकर रखा और यही चिन्ता कि केवट कहीं सिर न उठा ले। लेकिन केवट ने भगवान से कहा कि महाराज, आप तो अपनी महिमा के द्वारा, अपनी महिमामयी कृपा के द्वारा मेरी हीनता को दूर करने के लिए आए हैं। इसलिए मैं लोगों को बता देना चाहता था कि सचमुच आपकी यात्रा का उद्देश्य क्या है? आप अपने मुँह से यह कहिए कि मेरा चरण धोओ और भगवान श्रीराम केवट के सामने इतने झुके कि कहने लगे –

बेगि आनु जल पाय पखारू।
होत बिलंबु उतारहि पारू।। २/१००/२

जल्दी से जल लाकर मेरा पैर धो दो और जल्दी पार ले चलो, मुझे विलम्ब हो रहा है। जब तक तुम पार नहीं उतारोगे, मैं पार नहीं उतर पाऊँगा। केवट मुस्कराने लगा।

केवट ने कहा, प्रभु आप तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। अगर यात्री को पार उतारना है, तो जो यात्री पहले से खड़े हैं, उन्हें पहले पार उतारना चाहिए न ! आप तो बाद में आए हैं, पहले से जो यात्री खड़े हैं, उनको पहले पार उतारूँगा। आश्चर्य हुआ ! घाट पर यात्री तो एक भी नहीं है। पर केवट ने प्रभु को दिखाया। बोले, प्रभु बहुत से यात्री हैं। जितने बेचारे केवट के पूर्वज थे, गंगा में भी उन्होंने पाप ही किया। पार तो उतर पाए नहीं, वे प्रतीक्षा कर रहे थे। केवट ने यही कहा कि पहले मैं अपने पुरखों को पार उतार लूँ, फिर मैं आपको पार उतारूँ।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।
२/१०१/०

गोस्वामीजी ने कहा कि केवट पहले पितरों को पार किया, फिर प्रभु को पार किया। केवट ने कहा, प्रभु संसार ने मुझे इतना दोषी मान रखा था, मुझे छूने से डरता था। जब मैंने पितरों को भी पार कर दिया और आपको भी पार कर दिया, तो क्या कोई मुझमें रंचमात्र दोष की कल्पना कर सकता है कि केवट में रंचमात्र दोष है? मैं स्वयं मुक्त तो हूँ ही, मेरे सामने मुक्त होने की समस्या तो है नहीं, पर मैंने तो पुरखों को भी मुक्ति देकर, आपको भी पार उतारकर दोषों से मुक्ति पा ली। ये जो तीन शब्द केवट ने कहे, यही रामराज्य का मूल आधार है। भगवान समाज में यही परिवर्तन करने के लिए नीचे से, रामराज्य के नागरिक के रूप में केवट को महत्त्व देते हैं और केवट से रामराज्य की स्थापना का श्रीगणेश होता है।

अयोध्या में जब औपचारिक रूप से रामराज्य की स्थापना हुई, तो वहाँ पर भी भगवान श्रीराघवेन्द्र ने श्रीगणेश कहाँ से किया? बन्दरों से किया। वन के सन्दर्भ में सबसे पहले महत्त्व दिया प्रभु ने केवट को और आज राज्याभिषेक के सन्दर्भ में प्रभु ने सबसे अधिक महत्त्व दिया बन्दरों को। केवट तो समाज में सबसे निम्न वर्ग का माना जानेवाला व्यक्ति था, पर वानर तो पशु हैं, वे तो मनुष्य भी नहीं हैं। पर रामराज्य का अभिप्राय व्यापक अर्थों में यह है कि केवल मनुष्य ही सुखी हो जाये, सन्तुष्ट हो जाये, यह रामराज्य नहीं है। हम पशुओं की हत्या करते रहें, पशुओं का दुरुपयोग करते रहें, हम पशुओं को पीड़ा पहुँचाते रहें और यह मान लें कि मनुष्य अगर सन्तुष्ट है, तो बहुत अच्छी व्यवस्था है, बहुत अच्छा राज्य है, तो यह रामराज्य का आदर्श नहीं है। गोस्वामीजी का दोहा, जो मैं नित्य पढ़ता हूँ, उस दोहे में यही कहा गया कि –

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।।
७/२१/०

इसका अभिप्राय है कि रामराज्य की व्यवस्था न केवल मनुष्यों के लिए है, अपितु पशुओं के लिए भी है, पक्षियों के लिये भी है। वन में रामराज्य की स्थापना के सन्दर्भ में पक्षियों का वर्णन आता है। भगवान राम ने गीध से मित्रता की। भगवान कौवे के साथ खेलते हैं, भगवान राम बन्दरों को मित्र बनाते हैं। मानो यह बताने के लिए है कि भगवान श्रीराघवेन्द्र का राज्य केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है, भगवान श्रीराम का जो राज्य है, वह समस्त सचराचर तक व्याप्त है। **(क्रमशः)**

असम्भव को सम्भव किया

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

आओ बच्चो, आज हम आपको फिर से एक नई कहानी सुनाते हैं – जब भी हम किसी दिव्यांग व्यक्ति को देखते हैं तो उसके लिये हमारे मुँह पर पहला शब्द होता है बेचारा या बेचारी। बच्चो, आज हम जिसकी कहानी सुनने जा रहे हैं उनका नाम है डॉ. मालविका अय्यर। डॉ. अय्यर एक समाज सेविका, अन्तर्राष्ट्रीय प्रेरक वक्ता, विकलांगता अधिकार कार्यकर्ता, डॉक्टरेट (पीएचडी) की उपाधिधारी, एक समावेशी समाज के निर्माण की वकालत करनेवाली है।

मालविका का जन्म तमिलनाडु के कुंभकोणम् नामक स्थान में हुआ था। उसका जन्म तो एक सामान्य बच्चे की तरह ही हुआ था और वह बचपन में खेल खेला करती थी। पर जब वह १३ वर्ष की थी, तब उसके जीवन में सुनामी जैसा तुफान आया।

जब उसके पिताजी बीकानेर में थे, तब २६ मई, २००२ को एक घटना घटी। मालविका अपने घर के गैरेज में अपनी जींस के मरम्मत के लिए कुछ ढूँढ रही थी। उसके हाथ में कुछ आया, जिसे उठाकर वह अपने कमरे की ओर दौड पड़ी। मालविका को यह नहीं पता था कि जिस वस्तु (सामान) को उसने अपने हाथ में उठाया है, वास्तव में वह एक ग्रेनेड है। वास्तव में हुआ यह था कि उसके घर से कुछ ही दूर (पास के) पर हथियार फैक्ट्री में जोरदार धमाका हुआ था, जिसके कारण कुछ बम के टुकड़े इधर-उधर बिखर गये थे। उस ग्रेनेड के कारण मालविका ने अपने दोनों हाथ खो दिये। इसके अलावा उसको बहुत फ्रेक्चर हो गये थे। उसके मुँह में भी कई सर्जरी करना पड़ा और उसे नर्व परालाइसिस भी हो गया था।

मालविका के मित्र, सगे-सम्बन्धिओं को बस इसी बात की खुशी थी कि मालविका बच गई है, पर उनके व्यवहार के कारण मालविका को दिल्ली और चेन्नई जैसी गर्मी वाली स्थानों में भी पूरे बाँह (आस्तिन) वाले कपड़े पहनने पड़ते थे। अपने दोनों हाथ खोकर भी मालविका को दिव्यांग होने का इतना दुख नहीं होता था, जितना कि लोगों के व्यवहार के कारण दुख होता था।

मालविका की माँ ने उसके जीवन में प्रेरणा भरकर उसके जीवन को आसान बना दिया। उन्होंने समझाया कि जीवन में सफल होने के लिए स्वस्थ शरीर का होना ही सब कुछ नहीं होता, अपने संकल्प से मनुष्य जीवन में बहुत आगे जा सकता है। मालविका अपनी दसवीं की कक्षा में परीक्षा देने के लिए एक स्क्राइबर (जो परीक्षार्थी के बोलने पर उनके प्रश्न पत्र लिखते हैं) के द्वारा परीक्षा दी, जिसमें ९७ प्रतिशत अंक के साथ अपने राज्य में उसने स्थान बनाया। उसके प्रसंशकों में सबसे पहले हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम भी शामिल थे, जिन्होंने उसे और अच्छी तरह अध्ययन करने को कहा। मालविका ने दिल्ली में अपना अध्ययन जारी रखा। इसके बाद उसने मद्रास के सोशल स्कूल ऑफ सोशल वर्क से अपने एम.फिल की डिग्री ली। उसके एम.फिल थीसिस को अवार्ड भी मिला क्योंकि बिना हाथ के उसने अपने १००० पेज की थीसिस स्वयं ही टाईप किया था।

वह अपना भोजन स्वयं बनाती है, अपने कपड़े स्वयं पहनती है। वह वे सभी कार्य कर सकती है जिसे हम और आप कर सकते हैं, अन्तर केवल इतना है कि उसे थोड़ा अधिक समय लगता है। वह आत्मनिर्भर है, किसी पर आश्रित नहीं है। मालविका का विवाह लम्बे समय से रहे उसके एक मित्र से हुई, जो अमेरिका में नौकरी करता है।

जिस लड़की को लोग बेचारी समझ रहे थे, उस मालविका को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर ८ मार्च, २०१८ को भारत के माननीय राष्ट्रपति राम नाथ कोविन्द से महिला सशक्तिकरण में उत्कृष्ट योगदान के लिए महिलाओं का सर्वोच्च नागरिक सम्मान **नारी शक्ति पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। ८ मार्च, २०२० को भारत के माननीय प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी ने मालविका को अपना

शेष भाग पृष्ठ ६४० पर

लोकमान्य तिलक से विवेकानन्द के गीतोक्त कर्मयोग पर वार्तालाप

डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी, खगड़िया

भारत के नवजागरण की शंख-ध्वनि करनेवाले संत-महापुरुषों में स्वतन्त्रता संग्राम के सिद्ध महात्मा (Prophet Hero) लोकमान्य बालगंगाधर तिलक और युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द प्रकाश की ज्योति की तरह अवतरित हुए। उन दिव्य आत्माओं का दिव्य सन्देश वस्तुत: भारत के लिए ही नहीं, अपितु अखिल विश्व के लिए आध्यात्मिक उत्थान का उद्घोष था। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने लोकमान्य का सही मूल्यांकन करके ही तो उन्हें 'अजेय सागर' कहा था।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के महान क्रान्तिकारी देवदूत नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने नरशार्दूल युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द को 'आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलन का आध्यात्मिक पिता' की संज्ञा दी। द्वय आत्माओं ने सोए हुए देश और उसके स्वाभिमान को जगाया और नव जागृति का मंत्र फूँका।

तिलक में एक ही साथ आदिशंकराचार्य की ज्ञान-गरिमा, प्रताप, शिवाजी का शौर्य एवं स्वतन्त्रता-प्रेम तथा विवेकानन्द का भारत-गौरव तरंगायित हुआ था। तिलक जनता के हृदय-सम्राट थे, जो उन्हें 'महाराष्ट्र केसरी' के उच्च आसन से उठाकर 'लोकमान्य' के सर्वोच्च आसन पर बिठाकर गर्व अनुभव करती थी।

बालगंगाधर तिलक का जन्म महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के एक छोटे-से गाँव चिखल में २३ जुलाई, सन् १८५६ ई. को हुआ था। आपके पिता का नाम गंगाधर पंत था। देशभक्ति और आजादी की भावना का प्रचार करने के लिए आपने 'मराठा' 'केसरी' और 'सुधारक' नामक समाचार पत्र निकाले। बालगंगाधर तिलक बचपन से ही मेधावी थे। उनका विवाह १४ वर्ष की आयु में ही हो गया था। उन्होंने १८७६ ई. में बी.ए. और सन् १८७९ ई. में एल.एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। तिलक बचपन से ही निर्भीक, उत्साही, दूरदर्शी और बहुत ही कर्मठ थे। सन् १८८१ में उन्होंने 'केसरी' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। यह पत्र मराठी भाषा में निकलता था। उनका १८८९ ई. में 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' में प्रवेश एक युग परिवर्तनकारी घटना है। वे कांग्रेस में उग्रवाद के अग्रदूत और जीवन-शक्ति के स्त्रोत बन गए।

विश्ववरेण्य, बंग-भूमि के नरशार्दूल वीर युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता नगर के उत्तर भाग में सिमुलिया मोहल्ले में गौर मोहन मुखर्जी स्ट्रीट में रहनेवाले कायस्थ वंश के वंशधर विश्वनाथ दत्त के यहाँ १२ जनवरी, १८६३ ई. को हुआ। विवेकानन्द का बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनमें बचपन से ही यौगिक चेतना के लक्षण दिखलायी पड़ने लगे थे। किसी पुस्तक को पढ़ते समय वे कुछ पंक्तियों को पढ़कर और कुछ पृष्ठ देखकर सम्पूर्ण पुस्तक का विषय जान लेते थे। उनके प्रधानाध्यापक डब्लू. डब्लू. हेस्टी तो यहाँ तक कहते थे कि उन्होंने अपने जीवन में ऐसा मेधावी कोई भी छात्र नहीं देखा।

विवेकानन्द की श्रीरामकृष्ण परमहंस से भेंट

नरेन्द्र ने उन्हीं दिनों कॉलेज के प्राचार्य से रामकृष्ण परमहंस के विषय में सुना था। दक्षिणेश्वर के रानी रासमणि द्वारा निर्मित काली के मन्दिर के अनन्य पुजारी श्रीरामकृष्ण देव जी थे। वे उच्च कोटि के महान साधक थे और उन्होंने माँ भगवती काली का साक्षात्कार किया था। एक दिन नरेन्द्र उनके पास पहुँचे। उन्हें देखते ही श्रीरामकृष्ण ने उनकी आध्यात्मिक शक्तियों को पहचान लिया था। उन्होंने कहा, ''प्रभु ! मैं जानता हूँ कि आप वही प्राचीन ऋषि, नर रूपी नारायण के अवतार हैं, जो पृथ्वी पर जीवों के दु:खों को दूर करने के लिए पुन: अवतरित हुए हैं।' नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण से पूछा – ''क्या आपने ईश्वर को देखा है?'' इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''हाँ, मैं उन्हें वैसे ही देखता हूँ, जैसे कि मैं तुम्हें यहाँ पर देखता हूँ।''

कलकत्ता (अब कोलकाता) विश्वविद्यालय से नरेन्द्र नाथ ने सन् १८८४ ई. में बी.ए. की डिग्री प्राप्त की।

विवेकानन्द और बालगंगाधर तिलक की भेंट

अनेक शुभ संस्कारों से सन्त-महापुरुषों का दिव्य दर्शन होता है। उनके ही दर्शन से मनुष्य का घट और आत्मा दोनों आलोकित हो जाते हैं। उनके अन्तर के उदित ज्योति-सूर्य की किरणें दर्शक के हृदय के समस्त अन्धकार को दूर कर अखण्ड प्रकाश लाती हैं। यही दर्शन की महिमा है।

बहुत कम पाठक वृन्द इस बात को जानते हैं कि सन् १८९२ ई. में. पूना में पांडित्य शिरोमणि लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से विवेक के आनन्द स्वामी विवेकानन्द की भेंट हुई थी। उल्लेखनीय है कि द्वयनर-रत्नों के मध्य गीता के कर्मयोग पर व्यापक रूप से चर्चा हुई थी।

उल्लेखनीय है कि त्रिकालदर्शी महर्षि वेदव्यास ने 'महाभारत' के भीष्मपर्व के पच्चीसवें अध्याय से लेकर बयालिसवें अध्याय तक कुल अठारह अध्यायों के सात सौ श्लोकों के अन्तर्गत वेदोपनिषद के तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण जिस अप्रतिम दर्शन का अति प्रभावक निरूपण पुण्यभूमि कुरूक्षेत्र में परमगुरु भगवान श्रीकृष्ण और परम जिज्ञासु सव्यसाची (अर्जुन) के आकर्षण संवादों द्वारा किया, वह 'श्रीमद्भगवद् गीता' के नाम से विश्व विख्यात है।

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू धर्मशास्त्रों का मुकुटमणि है। गीता के अलौकिक गान पर देश-विदेश के चिन्तक मुग्ध हैं। एक जर्मन विद्वान ने तो यहाँ तक कह दिया – The Geeta is the most beautiful, perhaps the only true philosophical song existing in any known languge.

गीता एक विश्वविख्यात आध्यात्मिक ग्रंथ है। इस आध्यात्मिक ग्रंथ गीता पर अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से, विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों की रचना की है।

प्रसंगवश लोकमान्य तिलक को ब्रिटिश सरकार ने सन् १९०८ ई. से १९१४ ई. तक कारावास में रखा था। उन्होंने बर्मा में माण्डले जेल की १२-१२ फीट के कमरे में रहकर पेंसिल से 'गीता रहस्य' की रचना कर गीता की ज्ञान गरिमा को विद्वत्तापूर्वक सरलता एवं सुबोधता प्रदान की।

उल्लेखनीय है कि विद्वत्ता के ज्ञान-सागर बालगंगाधर तिलक ने दिनांक २ नवम्बर, १९१० ई. को गीता पर दिव्य टीका का श्रीगणेश कर, करीब नौ सौ पृष्ठों का यह विशाल ग्रंथरत्न दिनांक ३० मार्च, १९११ ई. को अर्थात् पाँच माह की अल्पावधि में उन्होंने पेन्सिल से लिखे थे।

सौभाग्यवश मूल मराठी गीता रहस्य का रायपुर (छत्तीसगढ़) निवासी स्वर्गीय माधवराव सप्रे ने इसका हिन्दी अनुवाद किया था। जिसका प्रथम संस्करण जून, १९१६ ई. में प्रकाशित हुआ।

हाँ, लोकमान्य तिलक से स्वामी विवेकानन्द का अद्भुत दिव्यग्रंथ 'गीता' के मुख्य विषय कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग पर वार्तालाप हुआ। कोई गीता में कर्म की प्रधानता, कोई ज्ञान की प्रधानता, तो कोई भक्ति की भक्ति की प्रधानता मानता है। तीनों को अलग-अलग तीन मार्ग बताते हैं, लेकिन वास्तव में तीनों एक हैं।

''गीता रहस्यं'' के विद्वान लेखक तिलक ने पृ. ४१ पर उल्लेख किया है – ''श्रीकृष्ण ने अपने उपदेश के प्रारम्भ में ही अर्जुन से कहा है। यह योग ही कर्मयोग शास्त्र है। अर्जुन के सम्मुख उपस्थित हुआ प्रसंग लोक विलक्षण नहीं है, संसार में इस प्रकार के छोटे-बड़े संकटों का सामना सभी को करना पड़ता है, इसीलिये भगवद्गीता में कर्मयोग शास्त्र का जो विवेचन किया गया है, उस का ज्ञान प्राप्त कर लेना हम सभी के लिए आवश्यक है।''

पुन: स्वामीजी की सन् १९०१ ई. को कलकत्ता में लोकमान्य से भेंट हुई थी।

लोकमान्य तिलक को भारतीय चेतना का जनक कहा जाता है। ३१ जुलाई, सन् १९२० ई. के दिन उनकी मृत्यु ६४ वर्ष की आयु में हुई थी। विद्वद्वरेण्य युगनायक स्वामी विवेकानन्द ४ जुलाई, १९०२ को ब्रह्मलीन हुये।

आजादी का अमृत महोत्सव की पुण्य बेला में आध्यात्मिक प्रेरणा स्रोतों और प्रकाश स्तम्भों में द्वय दिव्य सत्पुरुषों, महात्माओं, दिव्यात्माओं की कीर्ति-गाथा इतिहास में अमिट रहेगी। द्वयदिव्यात्माओं की देशभक्ति की पवित्र भावना प्रशंसनीय है। ○○○

जो अन्नपूर्णा हैं, वे ही श्रीमाँ सारदा हैं

चिन्मयी प्रसन्न घोष

अनुवाद - चम्पा भट्टाचार्य

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकरप्राणवल्लभे।

ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति।।

भूमिका – आदि शंकराचार्य ने अपने 'अन्नपूर्णा-स्तोत्र' में माँ अन्नपूर्णा के रूप और महिमा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। वे स्वयं शिव के अवतार हैं। शिव को छोड़कर माँ अन्नपूर्णा की महिमा का वर्णन और कौन करेगा? कौन 'नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्य रत्नाकरी निर्धूताखिल घोरपावनकरी' की कृपा, महिमा इस प्रकार से समझे? इसलिए शिव जिस प्रकार से भूख की ज्वाला से पीड़ित होकर माँ अन्नपूर्णा के हाथ से भोजन करके तृप्त हुए, उसी प्रकार शिवावतार ज्ञानश्रेष्ठ श्रीशंकराचार्य ने भी प्रत्येक श्लोक के अन्तिम पद में विनम्रता से शिव के शरणागत भाव को व्यक्त किया है – **भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी**' – कृपामयी माता और ईश्वरी-अन्नपूर्णा, तुम मुझे भिक्षा दो।

करोना वायरस के दुष्प्रभाव से भयंकर मृत्युयज्ञ के बाद, इस वर्ष फिर से हम सब जगत जननी दुर्गा का वासन्ती रूप और अन्नपूर्णा रूप में आराधना में जुट गए। नित्य अन्नदात्री, सबकी आनन्द-विधायिनी, वही काशीपुराधीश्वरी माँ अन्नपूर्णा प्रतिदिन अत्यन्त ममत्व के साथ जीव रूपी शिव को अन्नदान किए जा रही हैं। पुराण में वर्णित उस सुन्दर कहानी के अनुसार हम इस युग में 'सबकी माँ सारदा देवी' के महाजीवन को अन्नपूर्णा के रूप में ध्यानार्थ प्रयत्नशील वर्णांजलि रूपी यह लेख है। युग-जननी माँ सारदा तो सर्वदेव-देवीस्वरूपा हैं।

अन्नपूर्णा माहात्म्य : माँ पार्वती का दूसरा रूप है अन्नपूर्णा देवी। वे अन्नदा नाम से भी परिचित हैं। उन दो भुजाओं वाली देवी के दाहिने हाथ में स्वर्ण और विविध रत्नजड़ित दर्वी है, बाएँ हाथ में सुमधुर चरुपूर्ण पात्र लिए हुए हैं। वे सौभाग्यविधात्री, भक्तों की इच्छा पूरणकारिणी हैं।

दर्वी स्वर्णविचित्ररत्नखचिता दक्षे करे संस्थिता

वामे स्वादुपयोधरी सहचरी सौभाग्यमाहेश्वरी।[1]

चैत्र माह के शुक्ल अष्टमी तिथि में अन्नपूर्णा देवी की पूजा होती है। काली जगद्धात्री पूजा के समान तान्त्रिक मतानुसार यह पूजा होती है। हिन्दुओं के विभिन्न पुराण और ग्रन्थों में देवी अन्नपूर्णा का उल्लेख मिलता है। काशी और व्यास काशी प्रतिष्ठा की कहानी मिलती है। रायगुणाकर भारतचन्द्र की अन्नदामंगल काव्य में देवी अन्नपूर्णा का माहात्म्य वर्णित है। विवाहोपरान्त कैलाश की चोटी में शिव और पार्वती का दाम्पत्य जीवन बड़े सुख से बीत रहा था।

आर्थिक अभाव के कारण कुछ दिनों के बाद दाम्पत्य कलह आरम्भ हो गया। दारिद्र्य के बेताघात से भोले मनवाले भोलेनाथ ने पार्वती के तिरस्कार से घर छोड़कर भिक्षा की झोली लेकर भिक्षा लेकर वापस आऊँगा, ऐसा सोचा।

लेकिन महामाया की अद्‌भुत लीला है ! कहीं से भी भिक्षा नहीं मिली। अन्त में शिव कैलास लौट आए। इधर भूख से पेट की ज्वाला जल रही थी। पार्वती की माया से भिक्षा नहीं मिली, शिव को यह तनिक भी समझ में नहीं आया। कैलास लौटकर उन्होंने घी युक्त पुलाव, खीर, पीठे आदि भोजन किया। उन्होंने देवी की महिमा वृद्धि के लिए काशी में एक मन्दिर की स्थापना की। चैत्र माह के शुक्लाष्टमी को उस मन्दिर में देवी अवतीर्ण हुईं। इसके बाद से काशी में अन्नपूर्णा देवी की पूजा प्रचलित हुई। अन्नकूट उत्सव भी आरम्भ हो गया।

भगवान श्रीरामकृष्ण से एक दिन माँ सारदा ने सहज भाव से प्रश्न पूछा – ''मैं तुम्हारी कौन हूँ?'' ठाकुरजी ने कहा : तुम मेरी माँ आनन्दमयी हो।[2] दूसरे किसी दिन माँ ने पूछा: मुझे तुम क्या मानते हो? ठाकुरजी ने उत्तर दिया : जो माँ मन्दिर में है, जिन्होंने इस शरीर को जन्म दिया एवं जो अभी नहबत में रहती है और वही अभी मेरी चरण-सेवा कर रही है।''[3] अर्थात् माँ ही साक्षात् जगदीश्वरी हैं। वही

गर्भधारिणी और वही पतिव्रता सहधर्मिणी हैं। ये जगदीश्वरी तो अन्य रूप में अन्नपूर्णा और शाकम्भरी हैं।

माँ के जीवन में अन्नपूर्णा रूप का प्राकट्य : माँ सारदा में अन्नपूर्णा का प्रकाश दिखाई देता है। उनकी बाल्यावस्था में काली के रूप में एल्लापुकुरू (एक तालाब) के किनारे बेल से उतरकर एक बालिका माँ श्यामासुन्दरी के देह में विलीन हो गई। इससे पहले, पिता रामचन्द्र के तन्द्रावस्था में सपने में हेमांगी (स्वर्णमयी) बालिका लक्ष्मीरूप में दर्शन दी। किन्तु जब माँ सारदा ग्यारह वर्ष की बालिका थीं, तभी उनका अन्नपूर्णा रूप दिखाई दिया। वर्ष १८६४-६५ था। बाकुड़ा अंचल में भयंकर अकाल पड़ा था। पिता रामचन्द्र ने चारों ओर की भूख से हाहाकार देखकर अन्नक्षेत्र (नि:शुल्क भोजन वितरण केन्द्र) खोल दिया। वे खिचड़ी बनाकर लोगों को खिलाने लगे। गरम खिचड़ी थाली में परोसते ही भूख से पीड़ित लोग खा रहे थे और माँ अन्नपूर्णा सारदा खिचड़ी ठंडा करने के लिए दोनों हाथों से पंखा कर रही हैं। माँ अन्नपूर्णा छोटे भाईयों को लेकर आमोदर रूपी गंगा में नहाने जातीं। वहाँ बैठकर भाइयों को मुरमुरा खिलाकर घर लातीं। खेत में मजदूरों के लिए मुर्रा लेकर जातीं। टिड्डों के धान काटने पर माँ अन्नपूर्णा खेत-खेत में जाकर धान चुनतीं।

नन्हीं बालिका तालाब से घड़े में पानी ला रही है। रसोई के काम में माँ को मदद कर रही है। भोजन बनाने के बाद भारी बरतनों को उतारने के लिए पिताजी को बुला रही है। धान कूट रही है। जनेऊ के लिए सूत कात रही है। पालतू पशुओं को चारा डाल रही है। माँ अन्नपूर्णा ने मानव रूप में संसार के भरण-पोषण करके हमारे घर-घर में माँ-बेटियों में अन्नपूर्णा रूप विकसित करने के लिए एक आदर्श स्थापित किया।

नन्हीं सारदा ने पाँच वर्ष बीतने पर छठवें वर्ष में पदार्पण किया। इधर स्वयं जुगी लोगों के शिव मन्दिर से ज्योति बाहर आकर जिसका जन्म और जन्म के बाद विभूतिभूषित शिव ने कहा, जयरामबाटी के रामचन्द्र मुखजी के घर जाकर देखो, वहाँ विवाह के लिए कन्या चिह्नित करके रखी गयी है। ५ मई, १८५९ को शुभ मुहूर्त में इस शिव-पार्वती का विवाह सम्पन्न हुआ। पार्वती रूपिणी सारदा दूसरे दिन शाम को कामारपुकुर रूपी नए कैलास में आई। दीन-ब्राह्मण के परिवार में बहुभात (बंगाल में एक परम्परा जिसमें पति द्वारा नववधू को भोजन, वस्त्र आजीवन देने का संकल्प लिया जाता है) हुआ। कुछ दिनों के बाद, दीनता के कारण मनमुटाव हुआ। लाहा बाबू के पास से गहना लाकर बालिका वधू को पहनाया गया। अबोध नन्हीं पुत्री के शरीर से अब कैसे गहने उतारेगी सासु माँ चन्द्रामणि देवी? दुख से मन बोझिल हुआ। माँ के मन का कष्ट पुत्र गदाधर को समझ में आ गया। सोई हुई सारदा के शरीर से कुशलता से सारे अलंकार उतार लिए। नववधू निद्रा से उठकर हाथ, बाँह, गला दिखाकर बोली : मेरे यहाँ-यहाँ जो गहने थे, वो कहाँ गए? सासु माँ की आँखें भर आईं। बालिका वधू को उन्होंने गोद में उठा लिया। वे सान्त्वना देती हुई बोलीं : माँ, गदाई तुमको इससे भी अच्छे-अच्छे गहने बाद में बनवा देगा। माँ सारदा शान्त हो गईं। लेकिन उनके चाचाजी कामारपुकुर आकर भतीजी को अलंकाररहित देखकर क्रोध से गोदी में उठाकर उसी दिन जयरामबाटी लेकर चले गए।

यह भी महामाया की माया का खेल है ! पिता रामचन्द्र को जिन्होंने लक्ष्मी रूप में दर्शन दिया, वे इस मर्त्यलोक में नारी देह में आईं और कोजागरी लक्ष्मी पूजा के दिन चन्द्रमणि देवी को दर्शन देकर 'फिर आऊँगी' कहकर अदृश्य हो गईं। वे ही नारी-देह में स्वयं अलंकाररहित कैसे रहेगीं? बाद में माँ की बात मानकर गदाधर ने विविध अलंकार बनाकर दिए।

दक्षिणेश्वर या इस युग की काशी में माँ सारदा पति-दर्शन के लिए आईं। मानो मठ नवयुग का शिवपुरी हो। रानी रासमणि को माँ काली ने स्वप्न में बता दिया। जो भी हो, यहाँ शिव पार्वती के साथ विभिन्न सृष्टि-तत्त्व और अध्यात्म तत्त्व की चर्चा कर धर्मपूर्ण जीवनप्राप्ति हेतु अपने अनुभव से प्राप्त ज्ञानराशि समाविष्ट करने लगे। पुन: पुराणोक्त वही कहानी नवीनता के साथ थी। वासनाहीन, नि:स्वार्थ, त्यागोज्ज्वल जीवन ! आदर्श पूतचरित्रा, धर्मप्राणा, पतिव्रता पार्वती रूपी सारदा आनन्द से विभोर हुईं। बाद में उस दाम्पत्य जीवन का मधुर पवित्र चित्रण उन्हीं के श्रीमुख से मिलता है – "मानो हृदय में आनन्द रूपी पूर्णघट स्थापित है, उस समय से हमेशा ऐसा अनुभव करती थी। वही धीर, स्थिर, दिव्य उल्लास हृदय में कब तक पूर्ण रहता, उसे बोलकर नहीं समझा सकती।"[४]

इसके बाद तो पार्वतीरूपिणी अन्नपूर्णा का आत्मप्रकाश होता है। वे सारा दिन नहबतखाने में मानो बिन्दुवासिनी होकर संसार के विभिन्न प्रकार के काम करती रहती हैं, जैसे समयानुसार भोजन बनाकर ठाकुर के कक्ष में भोजन की थाली लाकर उनको अत्यन्त प्रेम से भोजन कराना, उनके भक्तों का संसार सँभालना। ठाकुर के साथ लगातार एक ही शय्या

पर माँ ने शयन किया, किन्तु उन्हें संसार में न खींचकर उनके द्वारा इच्छित ईश्वर-पथ में अपने वचनानुसार सहायता कीं। दोनों का मन आराध्य देवता के ध्यान में निमग्न रहता। यह एक अद्‌भुत अवतार लीला है ! केवल यही नहीं, माँ भवतारिणी मन्दिर के चारों ओर नारी-देह में भवतारिणी की पूजा को संसार ने देखा। श्रीरामकृष्ण ने फलहारिणी काली-पूजा के दिन सहधर्मिणी सारदा देवी को श्रीविद्या या त्रिपुरासुन्दरी या षोडशी मूर्ति में पूजा की। अवतार द्वारा अपनी शक्ति की महामाया के रूप में पूजा जगत के धार्मिक इतिहास में नया अध्याय संयुक्त हुआ।

मानो यह पुराणोक्त नवीनतम पुनरानुष्ठान था। शिव अन्नपूर्णा देवी के पार्वती रूप को न जानते हुए उनका प्रदत्त चरु या घी सहित पुलाव खाकर सन्तुष्ट हुए थे। इसीलिए उन्होंने काशी में मन्दिर की स्थापना की। साक्षात् आनन्दमयी के सत्य रूप को देखकर ठाकुर ने अपनी पत्नी को पार्वती के दूसरे रूप में, षोडशी देवी के रूप में पूजा किया और साधन-फल उन्हीं के चरणों में समर्पित किया।

अन्नपूर्णा रूप की कुछ और घटनाएँ

देशड़ा के हरिदास वैरागी जयरामबाटी में माँ को गाना सुना रहे हैं – (भावार्थ) हे माँ उमा ! कितना आनन्द है ! हे माँ शिवानी सच कहना, लोग कहते हैं कि काशीधाम में तुम्हारा नाम अन्नपूर्णा है?

घर के अंदर बैठकर माँ सुन रही हैं। आँखों से आँसू बह रहे हैं। यह तो उन्हीं का जीवन आलेख है। माँ श्यामा सुन्दरी के पास लोग नाना प्रकार की बातें बताते। कोई कहता दामाद पागल है। अन्त में श्रीमाँ दक्षिणेश्वर उन्हें देखने गईं। देखकर उनकी शंका समाप्त हो गयी।

श्रेष्ठ साधक और श्रेष्ठ प्रेमिक भी वही और सच-सच में ही शिव के घर में अन्नपूर्णा लोक जननी।

श्रीमाँ सारदा काशी में हैं। एक दिन गेरुआ वस्त्रधारी एक विधवा आकर उन्हें गाना सुनाई – (भावार्थ) गुड़हल के फूल तुम वन की शोभा हो, वन में ही खिलती हो। जब तुम शिव के वक्षस्थल में रहती हो, तो लगता है माँ के दो पैर हैं।

इसी काशी में गायक अघोरनाथ चक्रवर्ती माँ को कुछ दिन तक रामप्रसादी एवं काशी-माहात्म्यपरक गीत सुनाए थे। माँ आनन्दमयी को इसमें कितना आनन्द है !

शंकराचार्य ने स्तोत्र में माँ अन्नपूर्णा का वर्णन किया है –

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।

मुझे लगता है मानो यह श्रीमाँ का चित्र-वर्णन है।[५] माँ का अन्नपूर्णा रूप उनके मंत्र-शिष्य पुरुषात्मानन्द के शब्दों में मिलता है। वे दीक्षा के बाद प्रसाद लेने बैठे। अन्य कई लोग बैठे। सबकी थाली में भात, दाल और सब्जी दी गयी। मैं सोच रहा था, इतने थोड़े से दाल-भात से तो हमारे पेट का एक कोना भी नहीं भरेगा। भूख भी जोरों की लगी थी। यह बात मन में आते ही देखा, माँ सामने आकर खड़ी हो गईं। सबको भोजन करते हुए देख रही हैं। वे मेरे सामने आकर परोसनेवाली को बोलीं, बच्चों को इतना कम दाल-भात क्यों दिया? ये लोग अधिक भात खाते हैं। उनको और भात और तरकारी दो। इससे बच्चों का पेट नहीं भरेगा। मैं इस बार भी आश्चर्यचकित हो गया। समझ गया – माँ अन्तर्यामिनी हैं।[६]

ऐसी असंख्य घटनाएँ हैं। भक्त सन्तानों के असंख्य अनुभव हैं। माँ की सखी जयारूपिणा योगीन-माँ ने श्रीमाँ के हाथों से बने भोजन की बात बताई थी। श्रीमाँ ने भात और एक-दो बैगन, कच्चा केला और कंद से एक सब्जी बनाकर दी थी। सब्जी का स्वाद अभी तक मुँह में है। ऐसी सुस्वादु सब्जी थी ! असंख्य भक्तों की स्मृति में माँ के भोजन का स्वाद रखा है। जयरामबाटी में भोजन करने पर भी लेखिका को भी ऐसा ही अनुभव हुआ था। जय माँ अन्नपूर्णा ! जय माँ सारदा !

काशीधाम में माँ किसी को दीक्षा नहीं देती थीं। क्योंकि ऐसा करने से दीक्षार्थी मन्त्र और धाम के माहात्म्य से तुरन्त मुक्त हो जाएगा। यह तो अन्नपूर्णा और विश्वेश्वर का क्षेत्र है।

कामारपुकुर और जयरामबाटी भी अन्नपूर्णा और विश्वेश्वर का स्थान है। एक बार वर्षा के अभाव में खेत की फसल सूख गई। भादों के आकाश में एक बूँद पानी नहीं था। गाँव के प्रधानों ने आकर माँ को बताया। माँ ने कहा – ठाकुर को बताऊँगी। दूसरे दिन मूसलाधार वर्षा हुई। उस वर्ष जितनी फसल हुई, उतनी कभी नहीं हुई। अन्नपूर्णा की कृपा से ही वर्षा हुई, यह स्पष्ट समझ में आया।

कुसुम कुमारी देवी माँ के घर भोजन पकाती थी। उन्होंने माँ को बताया कि रसोई का सामान तेल, घी, आटा इत्यादि सम्भवत: भण्डार में नहीं है। माँ ने कहा – ठीक से देखो,

शेष भाग पृष्ठ ६२९ पर

गुरु-मन्त्र में महान शक्ति है

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

जब आपस में बैठकर चर्चा करते हो, तो परमार्थ की चर्चा करो। खाली समय में नाम-जप का अभ्यास करो। इससे मन शान्त हो जायेगा। हमेशा मृत्यु का स्मरण रखो। जो कुछ करो, समर्पण भाव से करो। जो भी अच्छा-बुरा किया है, उसे शरणागत होकर भगवान को समर्पण कर दो। ऐसा भाव रखना चाहिए कि मैं सब कुछ समर्पण बुद्धि से प्रभु प्रीत्यर्थ कर रहा हूँ, कर रही हूँ। हमारे जीवन में जो कुछ होगा, वह भगवान की इच्छा से ही होगा। ऐसा सोचने से जो भी हो रहा है, उसे हम स्वीकार करेंगे और हमें ऐसा लगेगा की हर समय ईश्वर हमारे साथ हैं। संसार के हर कार्य के पीछे ईश्वर का अस्तित्व है। हमें ईश्वर के सान्निध्य का सतत अभ्यास करना चाहिए। ईश्वर की अनुभूति ईश्वर की देह में ही होती है। प्रभु तो हमेशा हैं ही, उनकी उपस्थिति का अनुभव करना चाहिए। जो लोग नास्तिक हैं, उनके प्रति घृणा नहीं करनी है। घृणा नहीं करने से हमारा मन विचलित नहीं होगा। हम किसी के प्रति घृणा कर रहे हैं, ये भी भगवान देख रहे हैं। उससे हमारे अशुभ कर्म बन जाते हैं। हमें राग और द्वेष से बचकर निरन्तर साधना में रहना है। हमें दोष-दर्शन से बचना चाहिए। माँ सारदा कहती थीं, किसी में दोष नहीं देखना चाहिए। किसी का दोष देखने से हमारा ही मन दोषी होता है। मन से कटुता निकलने के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये और दूसरों का अशुभचिन्तन नहीं करना चाहिये। भगवान से प्रार्थना करनी है कि मेरा जिसमें मंगल हो, वही करो।

जप करने से हमारे विचार शुद्ध हो जाते हैं। हम सब विकारों से बच जाते हैं। हमारे मन में एकाग्रता आती है। एकाग्रता से चिन्तन होने से ईश्वर-लाभ होता है। जप से हमारा मन ईश्वराभिमुख हो जाता है। इससे चित्त शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होने से भगवान का अनुभव होने लगेगा। जपात् सिद्धि: का तात्पर्य यह है कि जप करते-करते हमारे मन का कलुष सब चला जाता है। जप करते-करते हमारे मन को अपवित्रता छू नहीं सकेगी, मन में सद्बुद्धि आयेगी। हमारे गुरु ने हमें सिद्ध मन्त्र दिया है और उन्हें प्राप्त करने की गुरु-कुंजी दी है तथा गुरु ने अपने आपको भी हमें दिया है। यही उनके अमूल्य रत्नों को पाना है। गुरु-मन्त्र में यह महान शक्ति है कि उससे तुम्हारा विवेक जाग जायेगा और तुम इसी जीवन में नित्यानन्द में डूब जाओगे। गुरु के दिए हुए अमूल्य रत्नों को खो बैठे, तो उनकी अवहेलना होगी। हमारे भीतर दुर्योधन की वृत्ति है। इसलिये हमारे मन में मोह भरा हुआ है। मोह के कारण हम आसक्त हो जाते हैं। लेकिन गुरु-मन्त्र के जप से हमारा मोह टूट जाता है, विवेक का उदय हो जाता है और भगवान में मन लगने लगता है। इसलिये सतत जप करते रहना है। यदि उसमें बाधा आती है, तो समझना ये अपने कर्मों का फल है। बाधा तो आयेगी ही, किन्तु उसकी ओर ध्यान नहीं देना है और सतत जप का प्रयत्न करते रहना है।

नियमित रूप से ईश्वर का चिन्तन करने से हमारी वासनायें कम हो जाती हैं। हमारी वासना ही हमें संसार में डूबाती है। हमें अपने मन को उपासनामय बनाना है। हम सोचते हैं कि जब सुविधा मिलेगी, तब भगवान का नाम लेंगे, पर मरते तक संसार में हमें सुविधा नहीं मिलेगी। इसलिये असुविधाओं में ही हमें भगवान का नाम लेने का अभ्यास करना है। पहले हमें भगवान की सेवा करनी है। बाद में संसार का काम करना है। इससे ही हमारी उन्नति होगी। भगवान हमारे हृदय में नित्य विराजमान हैं। वे अनन्त हैं, उनका अन्त नहीं है। ○○○

नाम क्या कम है? नाम और नामी अभिन्न हैं ! सत्यभामा ने तुला पर एक ओर श्रीकृष्ण को चढ़ाकर दूसरी ओर स्वर्ण, मणि-माणिक्य आदि रखते हुए उन्हें तौलना चाहा, पर उसका सारा प्रयत्न असफल हुआ। परन्तु जब रुक्मिणी ने दूसरे पल्ले में तुलसीपत्र और कृष्णनाम लिखकर धर दिया, तब दोनों पल्लों का भार समान हो गया।

– श्रीरामकृष्ण देव

मनःसूक्तम्

(छन्दः पञ्चचामरम्)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

मनो भ्राम्यति संसारे मनसि च स्थितं जगत्।
मनः प्रविश्य जानन्ति ब्रह्माण्डं पण्डिताः पराः।।१।।

— मन संसार में घूमता रहता है, जबकि मन में सम्पूर्ण जगत् समाया हुआ है। श्रेष्ठ ज्ञानीजन मन में प्रविष्ट होकर ब्रह्माण्ड को जान लेते हैं।

सर्वेन्द्रियाणि युक्तानि कामं स्वविषयैः सह।
नार्हन्ति भोक्तुमेतानि साहाय्यं मनसो विना।।२।।

— आँख, नाक आदि इन्द्रियाँ मन के सहयोग के बिना रूप, रस आदि अपने-अपने विषयों के साथ संयुक्त होकर भी उन विषयों का भोग नहीं कर सकतीं।

संसर्ग इन्द्रियाणां च विषयाणां न चेद्भवेत्।
सर्वानर्थान् मनो भुङ्क्ते भावेनैव यदृच्छया।।३।।

— यदि आँख, नाक आदि इन्द्रियों का और रूप, रस आदि विषयों का परस्पर संयोग नहीं हो, तब भी मन इच्छानुसार भाव के स्तर पर सारे विषयों का भोग कर लेता है।

देहो स्वपिति जागर्ति, जागर्ति तु मनः सदा।
देहो जीर्णो विनश्यति, तरुणममृतं मनः।।४।।

— शरीर सोता है और जगता है, किन्तु मन हमेशा जगा ही रहता है। शरीर पुराना होता है और नष्ट होता है, किन्तु मन हमेशा युवा और अमर है।

अधिष्ठातुः शरीरान्न जातु मनः प्रवर्तनम्।
मनसा प्रेरितो देहो वशीभूतः प्रवर्तते।।५।।

— अपने आधारभूत शरीर से मन का कभी प्रवर्तन नहीं होता। किन्तु मन से प्रेरित किया गया शरीर उसके वशीभूत होकर प्रवृत्त होता है।

सुकृते दुष्कृते चैव मनो युनक्ति देहिनम्।
मनसोद्धरणं लोकात् पातनं वा मुहुर्मुहुः।।६।।

— सत्कर्म और दुष्कर्म में देहधारी को मन ही लगाता है। इसलिए मन के द्वारा ही इस लोक से उद्धार हो सकता है अथवा मन के कारण ही बार-बार पतन होता है।

सुखदुःखानि कल्प्यन्ते मनसैव शरीरिणा।
मनोव्यापाररोधेन न दुःखं न सुखं पुनः।।७।।

— देहधारी मन से ही सुखों और दुखों का चिन्तन करता है। मानसिक व्यापार के अवरुद्ध होने पर न तो सुख का बोध रह जाता है और न दुख का।

एकत्र तिष्ठति देहे लोकाल्लोकान्तरं मनः।
मनोऽनुकारिजीवस्य न शान्तिर्न च सद्गतिः।।८।।

— देह भले ही किसी एक स्थान पर हो, किन्तु मन एक लोक से दूसरे लोकों में विचरण करता रहता है। मन का अनुगमन करनेवाले मनुष्य को न शान्ति मिलती है और न सद्गति।

सुहृदेकं मनः श्रेष्ठं मनः शत्रुश्च देहिनः।
देवत्वमनुकूलत्वे प्रतिकूले च दैत्यवत्।।९।।

— प्राणियों का एकमात्र मन ही अपना श्रेष्ठ मित्र या शत्रु है। मन के अनुकूल रहने पर देवत्व की प्राप्ति हो सकती है और प्रतिकूल होने पर दैत्य-सी स्थिति बनती है।

मनसा बध्यते जीवो, जीवन्मुक्तो मनोजयी।
मनः संयमनादेव निर्वाणं लभ्यते नरैः।।१०।।

— जीव मन के कारण ही बन्धनग्रस्त होता है। मन पर विजय पानेवाला जीते जी मुक्ति पा लेता है। मनुष्य मन को नियन्त्रित करके ही निर्वाण प्राप्त करता है।

एकाग्रमनसे किञ्चिदप्राप्तव्यं न कुत्रचित्।
लोकाय परलोकाय मनोयोगः समाश्रयेत्।।११।।

— एकाग्र मनवाले के लिए कहीं कुछ भी अलभ्य नहीं है। इसलिए लोक और परलोक, दोनों के लिए मनोयोग का आश्रय लेना श्रेयष्कर है। ○○○

जब साधक शुद्ध मन से जप करता है तब उसे लगता है कि भगवान का नाम सहज रूप से अन्तरतम से स्रोत के समान ऊपर उठ रहा है। उसे जप करने में प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जप-ध्यान आलस्य त्यागकर नियत समय में करना चाहिए। — श्रीमाँ सारदा देवी

जीवन में अनुशासन की आवश्यकता

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

हम सब अनुशासित पलटन (रेजीमेंटेशन) या मशीनों की तरह काम करना पसन्द नहीं करते हैं। हम स्वतंत्र और सहज होना चाहते हैं। अनुशासन कोई ऐसा शब्द नहीं है, जिसे सब लोग प्राय: हँसते-हँसते अपनाते हों। यह प्राय: विवशता से कार्य कराने की पद्धति को दर्शाता है, जो आनन्दहीन और कृतघ्नतापूर्ण है। 'अनुशासन' जीवन की शैली और गुणवत्ता में सुधार और प्रगति लाने का एक उपकरण है, जो हमें जैसा हम स्वयं को बनाना चाहते हैं, वैसा आकार देने में सहायता करता है।

अनुशासन का क्या अर्थ है

शब्दकोष के अनुसार 'अनुशासन' शब्द के कई अर्थ हैं। सबसे पहले, यह ज्ञान या सीखने की एक शाखा को उद्धृत करता है। उदाहरण के लिए, ज्ञान प्राप्त करने के लिए रसायन विज्ञान, जीवविज्ञान, गणित, भौतिकी इत्यादि विज्ञान के कई विषय हैं। दूसरा, इसका तात्पर्य उस प्रशिक्षण से हो सकता है जो आत्म-नियंत्रण, चरित्र, सुव्यवस्था और दक्षता विकसित करता है। किसी निश्चित कौशल में दक्षता प्राप्त करने के लिए अनुशासनों का पालन करना आवश्यक। तीसरा, अनुशासित प्रशिक्षण द्वारा दक्षता प्राप्त की जा सकती है। उदाहरण के लिए, कवि वाहिद अली ने कहा है –

दर्द कहाँ तक पाला जाए, युद्ध कहाँ तक टाला जाए।
तू भी है राणा का वंशज, फेंक जहाँ तक भाला जाए।।

हम ओलंपिक खिलाड़ियों के बारे में बात करते हैं कि वे बहुत अनुशासित हैं। टोक्यो ओलंपिक में गोल्ड जीतने वाले श्री नीरज चोपड़ा के नाम से आप सब परिचित हैं। उनका जन्म हरियाणा के पानीपत में एक किसान परिवार में २४ दिसम्बर, १९९७ को हुआ। श्री नीरज चोपड़ा बचपन में बहुत मोटे थे। मात्र १३ वर्ष की आयु में ही उनका वजन लगभग ८० किलो था। जिसके कारण गाँव के दूसरे बच्चे उनका हँसी-मजाक उड़ाते थे। उनके परिवार वाले भी मोटापे से परेशान थे। इसलिए नीरज के चाचा उन्हें १३ वर्ष की आयु से दौड़ लगाने के लिए स्टेडियम ले जाने लगे। परन्तु इसके बावजूद भी उनका मन दौड़ में नहीं लगता था। स्टेडियम में दूसरे खिलाड़ियों को भाला फेंकते देखकर वे भी भाला फेंकने उतर गए। मोटापा कम करने के लिए भाला फेंकना प्रारम्भ किया। यहाँ से उनका जीवन ही बदल गया।

चोट लगने पर भी हार नहीं मानी

श्री नीरज चोपड़ा को कंधे की चोट के कारण मैदान से दूर रहना पड़ा। चोट के कारण नीरज भाला नहीं फेंक पा रहे थे। वे भाले के बिना रह नहीं सकते थे। अत: ठीक होने पर उन्होंने फिर से मैदान में वापसी की। कोरोना के कारण वे कई प्रतियोगिताएँ नहीं खेल सके, पर हार न मानी। टोक्यो ओलंपिक में क्वालिफाइ कर ही लिया। कोच जयवीर सिंह ने श्री नीरज चोपड़ा की प्रतिभा को देखते हुए उन्हें भाला फेंकने का प्रशिक्षण दिया। इसके बाद पंचकूला में उन्होंने २०११-१६ से ट्रेनिंग ली। नीरज केवल भाला ही नहीं फेंकते थे, बल्कि लम्बी दूरी के धावकों के साथ दौड़ते भी थे। श्री नीरज चोपड़ा पढ़ाई के साथ-साथ जेवलिन यानी भाला फेंकने का भी अभ्यास करते रहे, इस दौरान उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर कई मेडल प्राप्त किये। नीरज ने २०१६ में पोलैंड में हुए आईएएएफ वर्ल्ड यू-२० चैम्पियनशिप में ८६.४८ मीटर दूर भाला फेंककर गोल्ड जीता। इस उपलब्धि पर भारतीय सेना ने उन्हें राजपूताना रेजिमेंट में नायब सूबेदार के पद पर नियुक्त किया। सेना में खिलाड़ियों को ऑफिसर के पद पर कम ही नियुक्ति मिलती है, लेकिन नीरज को उनकी प्रतिभा के कारण डायरेक्ट ऑफिसर बना दिया गया।

अनुशासनात्मक जीवन शैली से नीरज चोपड़ा ने भारत के लिए एथलीट में पहली बार ओलंपिक के भाला फेंकने की प्रतियोगिता अर्थात् जेवलिन थ्रो के फाइनल में ८७.५८ मीटर की दूरी पर भाला फेंका। मात्र २३ वर्ष की आयु में इन्होंने अपने अनुशासन से प्रेरित करनेवाली फिटनेस की मिसाल प्रस्तुत की।

अनुशासन का चौथा अर्थ, यह किसी समुदाय में सदस्यों के आचरण के लिए नियमों की एक प्रणाली को उद्धृत करता है। एक मठवासी समुदाय एक निश्चित समय पर उठने और औपचारिक प्रार्थना और ध्यान में एक निश्चित समय के लिए अनुशासन का पालन करता है। पाँचवा, इसका तात्पर्य ऐसे उपचार से हो सकता है, जो सुधार करता है या दण्डित करता है। हम किसी नियम या आचार संहिता का उल्लंघन करने पर किसी को अनुशासित करने की बात करते हैं।

ऊपर दिए गए चौथे और पाँचवें अर्थ में अनुशासन शब्द की व्याख्या की गई है, जबकि हम इस शब्द का उपयोग संस्कृत शब्द 'तपस्या' के अँग्रेजी समकक्ष के रूप में कर रहे हैं। इस प्रकार, यह दूसरा अर्थ है (अर्थात् आत्म-नियंत्रण, सुव्यवस्था और दक्षता) जिस पर हमें ध्यान केन्द्रित करना होगा।

अनुशासन के तीन अवयव

प्रथम – 'लक्ष्य' प्राप्त करना। लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छा हमारे आगे के प्रयासों का निरन्तर संचालन बनाए रखती है।

द्वितीय – धृति या दृढ़निश्चय। यह हमारे लक्ष्य के अनुस्मरण और लक्ष्य तक पहुँचने के उत्साह से उद्दीप्त होती है।

तृतीय – साधना या अभ्यास। यह वास्तविक गतिविधियों का वह समुच्चय है, जिनका अभ्यास हम आत्मानुशासन और लक्ष्य प्राप्त करने के लिए करते हैं।

ये तीनों अवयव पूर्ण और फलप्रसू अनुशासन के लिए आवश्यक हैं। यदि हम केवल लक्ष्य प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, किन्तु धृति और साधना का अभ्यास नहीं करते, तो हमारी इच्छा स्वप्न मात्र रह जाएगी। यदि हम दृढ़निश्चयी हैं, परन्तु हम अपने लक्ष्य के बारे में जागरूक नहीं हैं और न ही हम साधना करने का प्रयास करते हैं, तो फिर हमारा जीवन केवल नैराश्ययुक्त होगा। यदि हम बिना दृढ़निश्चय के या अपने लक्ष्य की प्राप्ति के बारे में जागरूक हुए बिना कार्य करें, तब यह प्रयास हमारे अंगों का उद्देश्यहीन संचलन होगा। हम भले ही इस प्रकार से प्रयास करते रहें, परन्तु इससे केवल हमारी ऊर्जा नष्ट होगी।

दूसरी ओर, जब ये तीनों अवयव विद्यमान होंगे, तभी हमारी प्रगति अविचल और योजनाबद्ध होगी। नियोजित प्रणाली से किये गये प्रयासों द्वारा अद्भुत परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। श्रीरामकृष्ण एक बार सर्कस देखने गये। उन्होंने देखा कि एक घोड़ा तीव्र गति से दौड़ रहा है और उसकी पीठ पर एक मेम एक पैर पर खड़ी है और यहाँ तक कि वह मार्ग में छंलाग लगाती, फिर भी अपना सन्तुलन बनाए रखने में सक्षम थी। यह दृश्य देखकर श्रीरामकृष्ण ने कहा, इस प्रकार का साहसिक कार्य केवल निरन्तर अभ्यास के द्वारा सम्भव है। उन्होंने कहा कि निरन्तर अभ्यास द्वारा अद्भुत परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

सहजता अनुशासन से आती है

जहाँ तक स्वतंत्रता का सम्बन्ध है, स्वतंत्र, स्वाभाविक और सहज होने की इच्छा रखना बिलकुल ठीक है। यद्यपि अनुशासन के बिना यह सम्भव नहीं है। स्वामी रंगनाथानन्दजी एक बार एक पत्रकार के साथ एक साक्षात्कार में अनुशासन की आवश्यकता के बारे में वार्तालाप कर रहे थे। पत्रकार ने कहा कि वास्तव में, उन्हें अनुशासन पसन्द नहीं है, उन्होंने सहजता की प्रशंसा की और बताया कि उन्हें सितार-वादक रविशंकर के संगीत की स्वाभाविकता और सहज प्रकृति कितनी पसन्द है ! इस पर स्वामीजी ने पूछा कि क्या उन्होंने इस बात पर विचार किया है कि रविशंकर ने स्वयं को उस अवस्था तक लाने के लिए कितना अनुशासन, कितने वर्षों का निरंतर अभ्यास किया है, जहाँ वे स्वाभाविक और सहज हो सकें। हम जिस स्थिति की इच्छा रखते हैं, वह अच्छी है, लेकिन यह मार्ग अनुशासन से होकर जाता है।

हम देखते हैं कि अनुशासन आत्म-अनुशासन बन गया है। अर्थात् नियंत्रण करनेवाली सत्ता कोई बाहरी सत्ता नहीं, बल्कि हम स्वयं हैं।

अनुशासन केवल स्वयं पर नियंत्रण करने के लिए ही नहीं है, बल्कि यह उस नियंत्रण का अभ्यास है, जो हमारे अन्दर छिपी हुई प्रतिभा या क्षमता को पहचानने, विकसित करने और अभिव्यक्त करने में सहायता करता है। दूसरे शब्दों में, हम स्वयं उस अनुशासन के लाभार्थी हैं, जिसका हम पालन करते हैं। ○○○

माँ सारदा कुटीर

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

माँ सारदा कुटीर, वृन्दावन पहले 'कालाबाबू कुञ्ज' के नाम से प्रसिद्ध था। इस भवन में श्रीमाँ सारदा देवी ने १८८६, १८९४ में लम्बे समय तक निवास किया था। यहीं श्रीमाँ ने दीक्षा देना प्रारम्भ किया। इसलिए रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन ने इस भवन को अधिकृत करने के पश्चात् इसका नवीन नाम 'माँ सारदा कुटीर' दिया। इसी भवन में श्रीरामकृष्ण के शिष्यों ने यथासमय आकर साधना की थी, जिनमें प्रमुख हैं – स्वामी विवेकानन्द १८८८ अगस्त में, स्वामी अद्भुतानन्द १८८६ श्रीमाँ के साथ, स्वामी ब्रह्मानन्द १८८४ सितम्बर में तीन महीने, १८९० फरवरी से सितम्बर, १८९३ और १८९४ नवम्बर-दिसम्बर तक, १९०३ में, स्वामी योगानन्द १८८६ में श्रीमाँ के साथ एक वर्ष और १८९४-९५ में श्रीमाँ के साथ दो महीने, स्वामी प्रेमानन्द १८९५ से १८९६ तक साथ में ब्रह्मचारी कालीकृष्ण (स्वामी विराजनन्द) भी थे, स्वामी तुरीयानन्द १८९३ में स्वामी ब्रह्मानन्द के साथ १८९४ तक और दूसरी बार १९०२ में तीन वर्ष रुके। स्वामी शिवानन्द १८८४, १८८६, १८९३ में, स्वामी सारदानन्द १८९१ और १९१६ में, स्वामी अद्वैतानन्द १८८८ में, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द १८९१ में, स्वामी अभेदानन्द १८८६ श्रीमाँ के साथ, गौरी माँ १८८६ में ठाकुर के देह-त्याग के कुछ दिन पूर्व से १८८७ तक, स्वामी अखण्डानन्द १८९१ सितम्बर में, स्वामी सुबोधानन्द १८९० में स्वामी ब्रह्मानन्द के साथ, योगीन माँ १८८६ में श्रीमाँ के साथ, ब्रह्मचारी हरेन्द्रनाथ १९०३ में आकर निवास किये थे। वृन्दावन सेवाश्रम के सेवाकार्य का सूत्रपात ब्रह्मचारी हरेन्द्र के द्वारा ही हुआ था तथा ये ही सेवाश्रम के प्रथम सचिव रहे। इसी कालाबाबू कुंज के दो कमरों में ही १९०७ में रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन की सेवा प्रारम्भ हुयी। इस प्रकार यह स्थान बहुत ही पवित्र और महत्त्वपूर्ण है।

सन् २००० में तत्कालीन सह संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने कालाबाबू कुञ्ज को रामकृष्ण मिशन में अधिकृत करने की इच्छा व्यक्त की। अपरिहार्य कारणों से यह उस समय नहीं हो सका, किन्तु बाद में १७ जनवरी, २००९ को रामकृष्ण मिशन, वृन्दावन के अधिकार में आ गया। प्राचीन होने के कारण भवन बहुत जीर्ण हो चुका था। इसलिये आश्रम के वर्तमान सचिव स्वामी सुप्रकाशानन्द जी, स्वामी ऋतात्मानन्द जी ने दोल गोविन्द बाबू की सहायता से इस भवन के जीर्णोद्धार का कार्य सम्पन्न किया। पुराने समय के भवन के निर्माण की प्रक्रिया के ढंग से ही चूने और सुरकी के प्रयोग द्वारा ही निर्माण-कार्य पूर्ण हुआ।

माँ के निवास कक्ष को मन्दिर का स्वरूप देने के लिए उस कक्ष के ऊपर मन्दिर की भाँति शिखर बनाया गया। इस शिखर की आकृति बेलूड़ मठ के श्रीरामकृष्ण देव के मन्दिर से मिलती-जुलती है। श्रीमाँ के कक्ष की ओर जाने के लिये नई सीढ़ियाँ बनाई गईं। इस प्रकार भवन के जीर्णोद्धार के समय कुछ परिवर्तन करने पड़े। परन्तु माँ के कक्ष का फर्श, खिड़की (जिससे श्रीमाँ नीचे मन्दिर में पूजित श्याम सुन्दर जी का दर्शन किया करती थीं), द्वार, स्नानागार तथा स्नानागार से पीछे की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ (जिन सीढ़ियों के द्वारा माँ यमुना दर्शन के लिए जाया करती थीं) तथा उन सीढ़ियों के ऊपर स्थित टंकी यथावत् रखी गयी है। भवन अधिकृत होने के समय तत्कालीन पुजारियों ने एक खाट भी दिया, जिसे उन लोगों ने श्रीमाँ के द्वारा प्रयोग किया गया बताया, जो कि आज इस भवन के संग्रहालय में संरक्षित है। वर्तमान में श्रीमाँ के निवास-कक्ष को प्रार्थना-कक्ष के रूप में रखा गया है। इसके पीछे के कक्ष को ठाकुर भंडार बनाया गया है। इसके नीचे के कक्षों को साधु-निवास तथा संग्रहालय का स्वरूप प्रदान किया गया है। वहाँ एक छोटा आँगन है, जिसमें श्रीमाँ की एक सुन्दर प्रतिमा स्थापित है, जिसे सारगाछी आश्रम के स्वामी विश्वमयानन्द जी ने बनाई है। इस जीर्णोद्धार के कार्य में लगभग एक करोड़ रुपये खर्च हुए। श्रीमत् स्वामी प्रभानन्द जी महाराज तथा स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज के अनुसार श्रीमाँ का इस भवन में आगमन १२ सितम्बर, १८८६ को हुआ था। अत: इसी दिन को ध्यान में रखकर १२ सितम्बर, २०१२ को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन दीक्षा-गुरु श्रीमत् स्वामी वागीशानन्द जी महाराज के कर कमलों के द्वारा इस भवन का उद्घाटन हुआ। OOO

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भक्त के तीन गुण

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।६।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।७।।

तु ये मत्परा: (परन्तु जो मेरे परायण भक्त) सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य (सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके) माम् एव अनन्येन योगेन (मेरी ही अनन्य भक्तियोग से) ध्यायन्त: उपासते (ध्यान उपासना करते हैं) पार्थ तेषाम् मयि (हे अर्जुन ! उन मुझमें) आवेशितचेतसाम् अहम् नचिरात् मृत्युसंसारसागरात् (चित्त निवेश करनेवालों को मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-सागर से) समुद्धर्ता भवामि (पार लगा देता हूँ)।

''परन्तु जो मेरे परायण भक्त सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मेरी ही अनन्य भक्तियोग से ध्यान, उपासना करते हैं, हे अर्जुन ! उन मुझमें चित्त निवेश करनेवालों को मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-सागर से पार कर देता हूँ।''

भगवान अर्जुन से कहते हैं देहबोध के रहते ज्ञान का

रास्ता अत्यन्त कठिन तो है, परन्तु जो लोग सांसारिक कर्म तो करते हैं, पर उसका संन्यास मुझमें कर देते हैं, मेरे परायण होते हैं, अनन्यरूप से मुझसे युक्त होकर मेरा ध्यान करते हैं और मेरी उपासना करते हैं, उन लोगों को मृत्युरूपी संसार-सागर से मैं पार करा देता हूँ। जिन लोगों ने अपना चित्त मुझमें आविष्ट कर दिया है, उनका मैं अविलम्ब उद्धार करता हूँ।

भक्त के लिए तीन गुण भगवान ने निर्धारित किए हैं –

१. समस्त कर्मों का संन्यास वह मुझमें करे।

२. वह मेरे परायण हो।

३. अनन्ययोग के द्वारा मेरी ही उपासना करे।

जिनमें देहबोध बना रहता है, वे तो इस शरीर को ही अपना घर मानते हैं। इसलिए ऐसी साधना उनके लिए कठिन हो जाती है। जिसने शरीर को घर मान लिया, वह तो उस घर में ही रहना चाहेगा। भक्त शरीर को अपना घर तो मानता है, पर साथ ही यह भी मानता है कि उसमें उसके प्रियतम इष्टदेव विराजते हैं। इसलिए वह उस घर के सब हिस्सों को साफ-सुथरा बनाए रखता है और रहने के घर में जैसे पूजा का कमरा होता है, उसी प्रकार अपने शरीरवाले घर में भी अपने हृदय को पूजा का कमरा बना लेता है, अपने हृदय को पूर्णतया शुद्ध रखता है और अपने भगवान को उसी में सदा विराजने के लिए कहता है। चित्त को, अन्त:करण को साफ रखने की उसकी शोधन करने की जो प्रक्रिया है, उसी के विषय में भगवान अर्जुन को समझाते हैं। अव्यक्त की साधना तो कठिन है। उसमें अधिक क्लेश है, परन्तु अपने कर्मों को भगवत् समर्पित करना आदि जो लक्षण भक्त के बताए हैं, उनके द्वारा साधना करना सहज है। अपनी सभी प्रकार की वृत्तियों को भगवान में आविष्ट कर देने पर मनुष्य कर्म-बन्धन में नहीं बँधता।

कर्म-बन्धन से मुक्ति किस प्रकार?

जिस प्रकार भून दिये जाने पर बीज अंकुरित नहीं हो सकता, उसी प्रकार जिस व्यक्ति की सारी चित्तवृत्तियाँ मुझे (भगवान को) समर्पित हो गई हैं, फिर उन चित्तवृत्तियों से कामनाएँ-वासनाएँ नहीं निकला करतीं। वे दग्ध हो जाती हैं।

भगवान कहते हैं –

न मय्यावेशितधियाम् कामः कामाय कल्पते।

(श्रीमद् भागवत)

'जो चित्त मुझे समर्पित हो गया है, उद्धव ! उस चित्त में कोई कामना यदि उठती भी है, तो उसे कामना नहीं कहना चाहिए।' सभी कर्मों का भगवान में संन्यास करने का अर्थ है – सभी कर्मों को करते हुए उनका स्मरण करना। प्रत्येक कर्म करते हुए यह चिन्तन बना रहे कि उस कर्म के द्वारा भगवान की ही सेवा हो रही है। ऐसा भाव तभी रहता है, जब हम भगवान से अत्यधिक प्रेम करते हैं और ऐसा मानते हैं कि सदा-सर्वदा उस एकमात्र ईश्वर का ही हमें सहारा है, वही एकमात्र हमारा रक्षक है और जब भगवान के प्रति इस प्रकार एक आश्रय का भाव जीवन में आता है, तभी मनुष्य अपने-आपको पूरी तरह उनके प्रति समर्पित कर पाता है।

समर्पित भक्त का भाव यह होता है कि जो भगवान मुझे जन्म देते हैं, मेरा पालन-पोषण करते हैं, वे यदि मेरे जीवन में, विपत्तियाँ भी लाते हैं, तो उन विपत्तियों को मैं सहज भाव से स्वीकार करूँगा। उन्हें बाधा के रूप में नहीं जानूँगा, भगवान का प्रसाद मानूँगा। ऐसा भाव जब मन में दृढ़ होता है, तब कहते हैं सब कर्मों को भगवान में संन्यस्त कर देना। यहाँ तक कि अपने जीवन में आनेवाली विपत्ति को भी भगवत्समर्पित ही कर दिया। मृत्यु का भय है, तो उसको भी श्रीचरणों में ही समर्पित कर दिया। ऐसा जो भाव रहता है, वह भक्ति को तीव्र बनाता है। हम प्रयत्न करें कि ऐसा ही भाव हमारे भी मन में बना रहे और अपने जीवन में घटनेवाली प्रत्येक घटना के पीछे हम ईश्वर की इच्छा को पहचान सकें तथा सबमें उनकी कृपा को देख सकें।

एक महात्मा के पास जाकर एक व्यक्ति बोला, 'महाराज! मुझमें जुआ खेलने की बुरी लत है। इसे आप छुड़ा दीजिए।' महात्मा बोले, 'छूटना क्या है? जुआ खेलो, पर भगवान के साथ खेलो। एक बार अपनी ओर से पासा चलो और एक बार भगवान की ओर से। इस तरह तुम्हारा शौक भी पूरा होता रहेगा और भगवान के साथ तुम्हारी मित्रता भी गाढ़ी होती जाएगी।'

हमारे दुर्गुणों, हमारी दुष्टप्रवृत्तियों का सम्बन्ध जब संसार के साथ होता है, तो वे हमारे नाश का कारण बनती हैं और उनका सम्बन्ध जब हम भगवान के साथ जोड़ देते हैं, तब वही हमारी मुक्ति का कारण बन जाती हैं।

भगवान जो कह रहे हैं कि सब कर्मों को मुझमें संन्यस्त कर दो, वह करना भक्त के लिए सम्भव है। ज्ञानी वैसा नहीं कर पाता। ज्ञान में तो वैसे ही कर्मों का संन्यास होता है। ज्ञान में हम इस संसार को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए ज्ञान-पथ का पथिक कर्म के जंजाल में पड़ना नहीं चाहता। वह कहीं एकान्त में चुपचाप बैठ जाएगा। आत्मा का ध्यान करेगा और उसके मन के समक्ष जो भी वृत्ति उपस्थित होगी, उसे 'न इति, न इति' 'यह आत्मा नहीं, यह भी आत्मा नहीं' कहकर नकारता चलेगा और इस प्रकार उसके कर्म छूटते चले जाएँगे।

परन्तु जो भक्त होता है, वह कर्मों को इस प्रकार से छोड़ता नहीं है। उसके कर्म छूटते भी नहीं हैं, चाहे जितना भी उनसे हम छूटना चाहें, कर्म किसी-न-किसी प्रकार होते ही रहते हैं। इसीलिए भगवान अर्जुन से कहते हैं, 'अर्जुन ! जब तक मनुष्य में कर्म करने की प्रेरणा है, वह कर्म को छोड़ नहीं सकता। अत: तू ऐसा कर कि कर्म तो कर परन्तु उनका संन्यास मुझमें करता चल। अपने कर्मों को भगवान से सम्बन्धित कर देने से ही यह कर्मों का संन्यास सधता है।' भगवान का आश्रय लेकर इस संसार में रहो, तो यह संसार हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।

मत्परः का जो भाव है, उसका अर्थ है कि कर्मों के साथ मन को, बुद्धि को भी भगवान को अर्पित कर दो। मत् कहनेवाले ये देवकीपुत्र कृष्ण ही नहीं, मानो साक्षात् विश्व की आत्मा हैं। या फिर उनके चतुर्भुज नारायणरूप को यहाँ ले लीजिए। या उनके द्विभुजरूप को ही देखिए। उनके कहने का तात्पर्य यही है कि तुम मेरे परायण हो जाओ। भगवान हमारे बल हो जाएँ, तो हम संसार से अपनी रक्षा कर सकते हैं। अनन्ययोग में है अनन्यता, जिसका अर्थ है कि भगवान को छोड़कर दूसरा कोई रहे ही नहीं। उस भाव के रहने पर हम किसी दूसरे का सम्बल पाने का प्रयत्न नहीं करते। एकमात्र भगवान का ही भरोसा रहता है।

अनन्यता का भाव धीरे-धीरे ही पक्का होता है। अपने कर्मों को प्रभु चरणों में सौंपकर सब परिस्थितियों में अपने प्रभु की ही इच्छा देखने का प्रयत्न तो भक्त करता है, पर उसकी अपनी इच्छा भी साथ-साथ बनी रहती है। अनुकूलता न मिलने पर दु:खी होता है। इसके बाद की स्थिति है

'मत्परायण' की, जब भगवान की इच्छा में हम अपनी इच्छा मिला देते हैं। जैसेकि जो सेवक अपने स्वामी के परायण होकर रहता है, वह स्वामी की इच्छा में ही अपनी इच्छा देखता है। यह हुई 'मत्परायण' की स्थिति। 'अनन्यता' की स्थिति, सम्बन्ध बना लेने का भाव है, जिसमें उनके अलावा और किसी से सम्बन्ध नहीं रहता। ज्ञानी का ध्यान एक ही सत्ता का ध्यान है। उसके ध्यान में मन को लीन करने का भाव है। 'नेति नेति' कहते हुए जाकर शून्य में, सत्य में, उस एक चैतन्य में अपने को स्थित करने का प्रयत्न करेगा।

भक्त अपने मन को किसी एक जगह बिठाने का प्रयत्न नहीं करता। वह कभी भगवान के चरण देखेगा, उनकी बाँहें देखेगा। उनके नेत्र निहारेगा। उनके मुकुट को निरखेगा। कभी उनके केश, कभी पीताम्बर देखेगा। अर्थात् भक्त के मन को उपासना करते हुए खाद्य मिल रहा है। वह संसार का नहीं, जो कुछ भी भगवान से सम्बन्धित है, उसका चिन्तन करता है। उसका मन भगवान से संलग्न रहता है, भगवान में लीन रहता है। इस प्रकार की उपासना सुलभ उपासना होती है। जैसे ज्ञानी करता है या जैसे राजयोग का साधक धारणा, ध्यान और समाधि के द्वारा अपने मन को संसार से निकालकर कहीं एक जगह एकाग्र करने का प्रयत्न करता है, वैसा हम करना चाहें तो उसमें कठिनाई लगती है। क्योंकि मन का स्वभाव तो क्रियाशीलता है और हम उसको निष्क्रिय बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए मन वहाँ से छूटकर बारम्बार भागता है। भक्त तो भगवान के रूप, उनकी लीला, उनके धाम का चिन्तन करता रहता है। अत: उसका इस प्रकार क्रियाशील मन डूबता नहीं।

अनन्ययोग : अहंकार-नाश की स्थिति

अनन्ययोग में अहंकार के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। हम अपने अहंकार को भगवान के अहंकार में डाल देते हैं। मन की शक्ति, जो निराकार तत्त्व है, शून्य है, उसमें यदि भावना बहुत तीव्र हो जाए, तो भगवान को लाकर सामने उपस्थित कर दे। मन को भगवान में लगाना है, तो ज्ञानी कहेगा कि मन में जो वृत्तियाँ उठती हैं, उनका पहले नाश कर दे। भक्त कहेगा कि मन में उठनेवाली वृत्तियों को भगवानरूपी भोजन दे दो। इनको भगवन्मुखी बना दो। अपने मन की कल्पना को आप कितनी भी सुन्दर और कितनी भी पवित्र बना सकते हैं।

कल्पना करें कि सुरम्य गंगातट के किसी उपवन में एक तुलसी के पौधे से आपने चुन-चुन कर १०८ पत्तियाँ निकालीं। उन्हें गंगाजल से धोकर सुखाया। उनपर अपने इष्ट का नाम लिखा । फिर एक-एक पत्ती उठाकर अपने इष्टदेव के चरणों में अर्पित की। इस प्रकार बहुत काल के लिए आपका मन भगवान से जुड़ गया। हमें जो अपने मन को भगवान के चरणों में स्थिर करना है, वह इसी प्रकार के अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सधता जाएगा। इस प्रकार एक बड़ी सक्षम साधना जीवन में आती है। इसीलिए भगवान ने कहा, 'ध्यायन्त उपासते। अर्जुन ! ऐसा जो मेरा भक्त है, वह अनन्ययोग के द्वारा अपने अहंकार को मुझमें डालकर, अपनी इच्छा को मेरी इच्छा से मिलाकर सब समय मेरा ध्यान करता है, मेरी उपासना करता है, अर्थात् उसका आसन मेरे निकट ही रहता है।' भगवान अपने भक्त का अहंकार स्वयं ही हरण भी कर लेते हैं। भगवान की लीलाओं का चिन्तन करते रहने से, स्मरण रखने से कि वे कैसे दोषापहारी हैं, भक्त के मन का समस्त कलुष धुल जाता है। भगवान कहते हैं, 'इस प्रकार मेरा ध्यान करते रहकर मेरी उपासना करनेवाले भक्त का मैं सम्यक् रूप से उद्धार करता हूँ। जिस भक्त ने अपने चित्त में मुझको आविष्ट कर लिया, उसके लिए मैं नौका बनकर आता हूँ और अविलम्ब उसे पार पहुँचा देता हूँ।'

भक्त में सेवा भाव रहता है और इस परायणता से वह भगवान की सेवा करता है कि वह सेवा ही उसकी उपासना बन जाता है, वही उसका ध्यान बन जाता है और उन्हें मृत्यु-संसार से तारने के लिए स्वयं भगवान आ जाते हैं यह **भक्तियोग** है। साक्षात् **धर्म्यामृत** ही है। **(क्रमशः)**

कर्मयोग यानी कर्म के द्वारा ईश्वर के साथ योग। अनासक्त होकर किया जाने पर प्राणायाम, ध्यानधारणादि अष्टांग योग या राजयोग भी कर्मयोग ही है। संसारी लोग अगर अनासक्त होकर, ईश्वर पर भक्ति रखकर, उन्हें फलसमर्पण करते हुए संसार के कर्म करें, तो वह भी कर्मयोग है। फिर ईश्वर को फलसमर्पण करते हुए पूजा, जप आदि करना भी कर्मयोग ही है। ईश्वरलाभ ही कर्मयोग का उद्देश्य है।

— श्रीरामकृष्ण देव

प्रेममय स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

स्वामी आत्मस्थानन्द

पूर्वसंघाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन

जब मेरी विदेश यात्रा का निर्णय लिया गया, तो मुझे सन्देह हुआ। पूज्यपाद महाराज बूढ़े हो रहे थे, उनका शरीर ठीक नहीं चल रहा था, मुझे डर था कि कभी भी कुछ हो सकता है। मैं उसके पास गया और कहा, ''महाराज, मुझे आपके बारे में बेचैनी हो रही है। आप किसी दिन मुझसे बच निकलेंगे और मैं बहुत दूर हो जाऊँगा। उन्होंने सुना और कहा, ''नहीं, तुम चिन्ता मत करो। मैं इतना जल्दी नहीं मरूँगा। तुम विदेश जाओ। जब तक तुम वापस नहीं आओगे, मैं निश्चित रूप से रहूँगा।'' उनकी यह बात सुनकर मैंने शान्ति से विदेश यात्रा की। वहाँ से मैं उन्हें हर तीन दिन में फोन करता था। वापसी के लिये १२-१४ दिन बचे थे। मैंने एक दिन फोन किया। फिर उन्होंने पूछा , ''कब आ रहे हो?'' मैंने कहा, ''मैं ४ अगस्त को वापस आऊँगा। उन्होंने कहा, ''अरे बाबा ४ अगस्त ! अभी भी इतना समय है। यह सुनकर मैंने कहा, तो महाराज दो या तीन दिनों में मठ में वापस आ जाऊँगा? यह सुनकर उन्होंने कहा, नहीं बापू, ऐसा मत करो। तुम यात्रा पूरी करो। मैं तब तक रहूँगा।'' मैं यात्रा पूरी कर ४ अगस्त को बेलूड़ मठ वापस आया। ५ तारीख की सुबह मेरी भेंट पूज्यपाद महाराज से हुई। उन्होंने मुझे हमेशा की तरह स्नेह किया। मैंने उनके मुँह में फॉक्स-लोजेंस दिए, उन्होंने भी मेरे हाथ में कुछ फॉक्स-लोजेंस दिए। मैं थक गया था, इसलिए दोपहर में आऊँगा और विस्तार से सब कुछ बता दूँगा, मैंने सोचा। इसलिए मैं मठ में अपने निवास वापस चला आया। खैर, फिर क्या हुआ ! मैं अपने कक्ष में विश्राम कर रहा था और वे दोपहर पाँच बजे अचानक पीयरलेस हॉस्पिटल चले गये। सभी ने सोचा कि मैं सो रहा हूँ, इसलिए मुझे जगाना ठीक नहीं होगा। सब कुछ सुनकर मैं बहुत परेशान हो गया। मैंने मन ही मन सोचा – क्या हुआ? मुझे याद आया, जब मैं सुबह उनसे मिला, तो वे बार-बार मुझे दया की दृष्टि से देख रहे थे। मुझे समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हो रहा है! मैंने पूछा, ''कुछ तो बोलिए?'' वे बोले नहीं।'' अगले दिन जब मैं अस्पताल का दौरा करने गया, तो वही था – कहने के लिये कुछ नहीं। अभी देख रहा हूँ, मैं उनके शरीर पर हाथ फेरने लगा, वे धीरे से मुस्कुरा दिए, बस इतना ही। मैं उनके इस व्यवहार से चिन्तित था। जब निश्चित हुआ कि उनका ऑपरेशन होगा, तो डॉ. बिमलेन्दु मुखर्जी उनका आशीर्वाद लेने गए। लेकिन महाराज ने उनको आशीर्वाद नहीं दिया। बहुत अनुरोध के बाद उन्होंने बस इतना ही कहा, It's too late. – ''बहुत देर हो चुकी है।'' यह सुनकर सभी सन्न रह गए। उनको अपना सम्भावित प्रस्थान ज्ञात था। उन्होंने मुझसे कहा, ''मैं निश्चित रूप से तुम्हारे वापस आने तक रहूँगा।'' तब मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि ऐसा सच में होगा।

जैसा कि मैंने पहले कहा, वे प्रेम के प्रतीक थे। ईश्वर प्रेम-स्वरूप है। संघ अध्यक्ष के आसन पर जो भी बैठता है, वह भी रामकृष्ण का प्रतिनिधि होता है। वे करुणा से अभिभूत थे। दयालु श्रीरामकृष्ण लोगों की रक्षा करने के लिए, उनका मार्गदर्शन करने के लिए, उनके उद्धार के लिए अवतरित हुए थे। इसलिए जो कोई संघाध्यक्ष के आसन पर बैठकर श्रीरामकृष्ण का ध्यान करता है, वह उनके स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। उनमें श्रीरामकृष्ण के भाव दिखाई देते हैं। स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ठाकुर श्रीरामकृष्ण की मूर्ति के रूप में विराजमान थे, वे हैं, वे रहेंगे। ○○○

(२२ अगस्त, १९९८ को बेलूड़ मठ में आयोजित स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज की स्मृति में दिया गया अध्यक्षीय भाषण)

प्रश्नोपनिषद् (४२)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

ओंकार के एक अक्षर की उपासना

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव
संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते।
तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा
ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति।।५/३।।

अन्वयार्थ – यदि स: (यदि वह) (उपासक), एकमात्रम् (ओंकार के केवल एक मात्रा 'अकार' को जानकर, उसका) अभिध्यायीत (सर्वदा ध्यान करता है, तो), स: (वह), तेन एव (उस ध्यान के द्वारा ही), संवेदित: (प्रेरित हुआ), तूर्णम् एव (शीघ्र ही), जगत्याम् (पृथ्वी पर), अभिसम्पद्यते (मनुष्य शरीर प्राप्त करता है) (क्योंकि), तम् (उस उपासक को), ऋच: (ऋग्वेद की ऋचाएँ), मनुष्यलोकम् (मनुष्य शरीर में ही), उपनयन्ते (पहुँचाती हैं), तत्र स: (उस मनुष्य शरीर में वह उपासक), तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया (तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा से), सम्पन्न: (युक्त होकर), महिमानम् (अपनी महिमा का), अनुभवति (अनुभव करता है)॥३॥

भावार्थ – यदि वह उपासक ओंकार के केवल एक मात्रा 'अकार' को जानकर, उसका सर्वदा ध्यान करता है, तो वह उस ध्यान के द्वारा ही प्रेरित होकर शीघ्र ही पृथ्वी पर मनुष्य शरीर को प्राप्त करता है, क्योंकि उस उपासक को ऋग्वेद की ऋचाएँ मनुष्य शरीर में ही पहुँचाती हैं, उस मनुष्य शरीर में वह उपासक – तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा श्रद्धा से युक्त होकर अपनी महिमा का अनुभव करता है॥३॥

भाष्य – स यद्यपि ओंकारस्य सकल-मात्रा-विभागज्ञो न भवति, तथापि ओंकारम्-अभिध्यान-प्रभावाद्-विशिष्टाम् एव गतिं गच्छति; एतद्-एक-देश-ज्ञान-वैगुण्यतया ओंकार-शरणः कर्म-ज्ञान-उभय-भ्रष्टो न दुर्गतिं गच्छति।

यद्यपि वह ओंकार के सभी अक्षरों को नहीं जानता, जिनसे ओम् का गठन हुआ है, तथापि ओंकार पर (आंशिक) ध्यान के प्रभाव से वह एक उत्कृष्ट लक्ष्य को प्राप्त करता है; जो ओंकार की शरण लेता है, वह इस तरह के आंशिक ज्ञान के दोष के फलस्वरूप, कर्म तथा ज्ञान – दोनों के फलों से वंचित होकर (भी) दुर्गति में नहीं पड़ता।

भाष्य – किं तर्हि? यद्यपि एवम् ओंकारम् एव एकमात्रा-विभागज्ञ एव केवलो-अभिध्यायीत -एकमात्रम् सदा ध्यायीत सः तेन एव एकमात्रा-विशिष्ट-ओंकार-अभिध्यानेन एव संवेदितः सम्बोधितः तूर्णं क्षिप्रम् एव जगत्याम् पृथिव्याम् अभि-सम्पद्यते।

तो फिर क्या होता है? चूँकि इस प्रकार वह ओंकार के केवल एक अक्षर का ज्ञाता होकर, (उसी का) निरन्तर ध्यान करता रहता है; उस (ओंकार के) केवल एक अक्षर के ध्यान के द्वारा ही वह बोध को प्राप्त होकर, शीघ्र ही जगत् को प्राप्त कर लेता है।

भाष्य – किम्? मनुष्य-लोकम्। अनेकानि हि जन्मानि जगत्यां सम्भवन्ति। तत्र तम् साधकं जगत्यां मनुष्यलोकम् एव ऋचः उपनयन्ते उपनिगमयन्ति।

क्या प्राप्त कर लेता है? – मानव जन्म। इस जगत् में अनेक प्रकार की योनियों में जन्म सम्भव है, परन्तु ऋचाओं (ऋग्वेद के मंत्रों) पर ध्यान करने से, वे (ऋचाएँ) ही उसे मनुष्य-योनि में ले जाती हैं।

भाष्य – ऋचः ऋग्वेद-रूपा हि ओंकारस्य प्रथम-एकमात्रा-अभिध्याता, तेन सः तत्र मनुष्य-जन्मनि द्विज-अग्रयः सन् तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया च सम्पन्नः महिमानम् विभूतिम् अनुभवति न वीतश्रद्धो यथेष्ट-चेष्टो भवति योगभ्रष्टः कदाचिद्-अपि न दुर्गतिं गच्छति।।५/३।।

ऋग्वेद-रूपा ऋचा (मंत्र) के एक अक्षर पर ध्यान करनेवाला, इसके द्वारा वह मनुष्य-लोक में द्विजश्रेष्ठ होने के बाद; तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से सम्पन्न होकर, (सकामी होने के कारण) ऐश्वर्य या विभूति का अनुभव करता है। वह श्रद्धाहीन यथेच्छाचारी नहीं होता। यदि कदाचित् वह योगभ्रष्ट भी हो जाय, तो दुर्गति को प्राप्त नहीं होता॥५/३॥**(क्रमशः)**

राम-नाम का अमृत

मैथिलीशरण 'भाईजी',
संस्थापक अध्यक्ष, रामकिंकर विचार मिशन, ऋषिकेश

विकल्प और विस्तार से निर्विकल्प और सूक्ष्म में स्थित हुए बिना परम तत्त्व की उपलब्धि सम्भव नहीं है। एक शब्द में या एक अक्षर में जो सत्य और तत्त्व है, पुराणों और वेदों में उसी का विस्तार है। वह अक्षर है, वह ॐ है, राम है, कृष्ण है। **चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरं एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।** उसी एक का विस्तार सृष्टि है। उसी एक का विस्तार दृष्टि और दृष्टिकोण है।

पीपल के वृक्ष के मूल को देखो, तो दृढ़ता दिखेगी, उसी के पत्तों में चंचलता मिलेगी। संसार के सन्दर्भ में संगति और माया का प्रभाव तो वायु के रूप में होता ही है और वह हमारे मन के कोमल पत्तों को विचलित किए बिना नहीं छोड़ेगा। जिसको कोई भी हिला दे, वही होता है मन। बस, इसी को भगवान में लगा दिया जाए, अर्थात् मूल में स्थित हो जाएँ, तो तना कभी नहीं हिल सकता है। अपने अधिष्ठान से जुड़ जाना ही योग है। हनुमानजी, काकभुशुंडिजी, शंकरजी और पार्वतीजी के साथ गणेशजी ने इसी मूल को पकड़ लिया और परम सिद्ध होकर सिद्धियों के परम तत्त्व रामनाम में आरूढ़ हो गये। सारा संसार विस्तार के पत्तों के समान हिल रहा है, झूम रहा है, पर यदि पीपल के मूल को देखें, तो उस पर अनुकूल और प्रतिकूल वायु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह अपनी ही सृष्टि को देखता रहता है।

मूल को हम निष्ठा या निष्ठावान कहते हैं। हनुमानजी उस निष्ठा के प्रतीक हैं, जो भगवान राम की लीलाओं के विस्तार और सृष्टि के मूल में श्रीसीताजी की शक्ति को देखकर अपने कर्तृत्व को भूले रहते हैं। भगवान का स्मरण करते रहना उनका सहज स्वभाव है। वे उस नामामृत को पीते रहते हैं, जिसमें कभी तृप्ति सम्भव नहीं है। पूर्णानन्द, अखण्डानन्द, आत्मानन्द, परमानन्द है राम-नाम का अमृत, जिसने मूल अमृत को ही पी लिया, वह अब क्या पिएगा? जो पूर्ण को प्राप्त करके भी बार-बार उसी को प्राप्त करना चाहता है, वस्तुत: वही पूर्ण ज्ञान है, वही पूर्ण भक्ति है, जिसका दर्शन हनुमानजी के जीवन में पग-पग पर होता है।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं,
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा,
संसारामयभेषजं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं,
धन्यास्तेकृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्।।

वेद का सार और सृष्टि का सार रामनाम है। हनुमानजी उसी रामनाम को सतत जपते रहते हैं –

सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू।।१/२५/६
महामंत्र जोइ जपत महेसू।
कासीं मुकुति हेतु उपदेसू।।१/१८/३

भगवान के दो अक्षरोंवाले रामनाम के प्रभाव से पुराण और वेद भरे पड़े हैं, पर धन्य हैं शंकरजी ! जो केवल नाम-निष्ठा के बल पर सगुण राम को हनुमान बनकर अपने वश में कर लेते हैं और शिव रूप में केवल निर्गुण मन्त्र का उच्चारण करके काशी में मुक्तिदाता होने का त्रैलोक में यश प्राप्त कर लेते हैं। वे स्वयं कभी शिव से अशिव नहीं होते हैं।

हनुमानजी इसी राम-नाम के प्रभाव से समुद्र लांघ गये। इसी मन्त्र की कथा सुनाकर विभीषण में शरणागति का आत्मविश्वास दे आये। इसी राम-नाम की मुद्रिका को देकर सीताजी को संतोष, विश्वास और भरोसा दे आये और लंका को भस्म करके स्वयं सुरक्षित लौट आये। तात्पर्य मात्र यह है कि बस मूल को पकड़ना आना चाहिए। पीपल के पत्ते तो मन के समान हैं। हम लोग कहीं स्थित न होने के कारण सदा विचलित रहते हैं। यदि थोड़ी-सी किसी ने झूठी प्रशंसा कर दी, तो भी हिलने लगेंगे और सच्ची निन्दा कर दी, तब भी हिलने लगेंगे। संसार में झूठ और सत्य की परिभाषा केवल हमारे राग और द्वेष पर आश्रित है। हनुमानजी और विभीषण अपने लिए एक ही मन्त्र का उपयोग करते हैं, वह है राम-नाम। दोनों ने रावण को भी उसी का सेवन करने का उपदेश दिया। यही नाम निष्ठा का सच्चा स्वरूप है, जिसमें अपने विरोधी के प्रति भी अहित भावना का अभाव हो। उस साधक के जीवन में क्षमा, कृपा, समता के मापदण्ड सबके

लिए अलग न होकर समान हैं। यह जो महानतम विवेक है, इसी के कारण हनुमानजी का शौर्य और धैर्य, सत्य और शील तथा सबमें एकरसता और स्थिरता बनी रहती है। इसका कारण यह है कि वे अपने मूलाधार में स्थित रहते हैं। हमें अपने जीवन में पहले पवित्र लक्ष्य निर्धारित करना होगा, तब साधन की पवित्रता सिद्ध हो जाएगी। श्रीरामचरितमानस में पाठ के पूर्व जिन देवताओं का आवाहन होता है, उसमें भी हनुमानजी का ध्यान पूर्व भाग में ही होता है –

श्रीहनुमन्नमस्तुभ्यमिहागच्छ कृपानिधे।
पूर्वभागे समातिष्ठ पूजनं स्वीकुरु प्रभो।।

सूर्यवंश में प्रकट श्रीराम सूर्योदय के समय प्राची दिशा में प्रकट होते हैं और कौशल्या अम्बा के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी प्राची दिशा की ही संज्ञा देते हैं –

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। १/१५/४

सारी दिशाओं का आधार पूर्व है, उसी के सामने पश्चिम और उसी से बाएँ उत्तर और दाहिने दक्षिण की स्वीकृति होती है। ये ही चारों भाई राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हैं। राम पूर्व हैं, लक्ष्मण पश्चिम, भरत उत्तर और शत्रुघ्न दक्षिण हैं। हनुमानजी इन चारों दिशाओं में एक ही तत्त्व देखते हैं, इसीलिए हनुमानजी दक्षिणमुख होकर भी पूज्य हैं। हनुमानजी के पास काल की घड़ी नहीं चलती है। दिशा का विवेक वे एक से ही करते हैं। हनुमानजी को कदाचित् ज्ञान भी नहीं होता है कि उनमें अपनी कोई साधना और उनका अपना कोई गुण है। उन्हें किसी फल की आकांक्षा भी नहीं होती है। गीता में कहा गया है –

सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। (गीता १५/२५)

सबकी योग्यता का उपयोग कर लेना ही श्रीराम और हनुमानजी की पूर्णता है, क्योंकि अन्ततोगत्वा समुद्र में तो सभी को समाना है, समुद्र और आकाश तो सभी का आश्रय है, यही उसकी व्यापकता है। यही व्यापकता सीताजी और श्रीराम हैं, जिनमें हनुमानजी लीन हैं :

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।।
७/११२ ख

द्वैत चाहे निज गुण-दर्शन में हो या पर दोष-दर्शन में, वह हानिकारक होता है। हनुमानजी जब भगवान श्रीसीता-रामजी के चरणों में रत रहते हैं, तो उनमें देहजनित गुण-दोष से विरति स्वयं सिद्ध ही है। ○○○

पृष्ठ ६१७ का शेष भाग

है। वापस जाकर देखने पर उस दिन के लायक सामान मिल गया।

चावल दिन में १० सेर और रात को १० सेर पकता था। किसी दिन मापते हुए दिखा कि उस दिन के लायक चावल नहीं है। चावल धान से दूसरे दिन तैयार होगा। माँ ने कहा और एक बार मापकर देखो तो। दूसरी बार मापकर देखा गया, उस दिन के लायक पूरा चावल था। यह सुनकर माँ बोलीं – पहली बार तुमने गलत मापा था।[७] साक्षात् अन्नपूर्णा माँ स्वयं को छिपा रही हैं। वे तो अन्नपूर्णा हैं, अभाव कैसे होगा। महाभारत में उल्लिखित पाण्डवों के वनवास काल में श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को दुर्वासा मुनि के क्रोध से रक्षा करने के लिए उनकी भात की हाँड़ी पूर्ण की थी। इसी घटना की पुनरावृत्ति माँ के मानवी-देवी लीला में पुन: हुई।

रात्रि का भोजन हो गया। ६-७ भक्त पद्मापार से आ गए। सुवासिनी देवी भोजन परोस रही थीं। हाँड़ी में और भात नहीं था। माँ को बताने पर वे बोलीं – हाँड़ी में भात है। नलिनी दीदी और सुवासिनी दोनों ने जाकर देखा, हाँड़ी में भात बिल्कुल नहीं है। माँ ने कहा – मेरा मन कह रहा है। भात है। वे स्वयं देखने गईं। २-३ लोगों हेतु भात था। कुछ रोटी सुबह के स्वल्पाहार के लिये रखा था, उसी रोटी और भात से सभी का रात का भोजन पूरा हुआ।[८] अघटन-घटनपटीयसी महामाया स्वयं माँ अन्नपूर्णा हैं। वे 'नित्यान्नदानेश्वरी' हैं। वे 'निरामयकरी' हैं। माँ के भक्त चन्द्रमोहन दत्त के कंधे में घाव हुआ था। कटोरे में सरसों तेल मंत्र पढ़कर माँ ने दिया। कुछ दिन लगाने के बाद घाव ठीक हो गया। ठाकुर का चरणामृत या पूजा के फूल, बेलपत्ते से भी माँ ने कई भक्तों को रोगों से मुक्त किया था। जय माँ ! ○○○

सन्दर्भ सूत्र : १. स्तव कुसुमांजलि : स्वामी गम्भीरानन्द सम्पादित, उद्बोधन कलकत्ता पृ.३६१ **२.** शतरूपे सारदा – स्वामी लोकेश्वरानन्द, रामकृष्ण मिशन इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता, पृ. ८४ **३.** वही **४.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. २८ **५.** श्रीश्रीमायेर पदप्रान्ते – संकलक और सम्पादक स्वामी पूर्णानन्द, उद्बोधन, खंड-४, पृ.१७२ **६.** वही, पृ. ४३१ **७.** वही, खंड ३, पृ.७२२ **८.** वही, पृ.१०३१

क्रोध से शान्ति की ओर

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

(गतांक से आगे)

क्रोध से मुक्ति पाने के उपाय

दूसरे के क्रोध को स्वीकार न करना – गौतम बुद्ध एक बार राजगृह के वेणुवन नामक स्थान में ठहरे हुए थे। एक दिन एक ब्राह्मण, जिसका कोई सम्बन्धी बौद्ध भिक्षु संघ में शामिल हो गया था, उन्हें गालियाँ देने लगा। उसके चुप हो जाने पर उन्होंने शान्त भाव से उससे पूछा, 'ब्राह्मण! क्या तुम्हारे यहाँ कोई अतिथि या बन्धु-बान्धव आते हैं?'

'हाँ' – ब्राह्मण ने उत्तर दिया।

'तुम उसके लिए अच्छी-अच्छी भोजन सामग्री भी तैयार करते होगे?'

'हाँ, करता हूँ।'

'अतिथि यदि उन चीजों को ग्रहण न करें, तो वे चीजें किसे मिलती हैं?'

'वे हमारी चीजें होती हैं, अत: हमारे यहाँ रहती हैं।'

'तो बन्धु, तुमने जो अभी-अभी गालियाँ दी हैं, उनका मैं भी उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि न तो मैं कभी किसी को गालियाँ देता हूँ और न कटु वचन ही कहता हूँ। भला बताओ, अब यह गालियाँ किसे मिलेंगी? तुम ही को न? यह भी आदान-प्रदान की बात है, जो चीज तुमने दी, वह मैंने ली नहीं। अत: वे गालियाँ तुम्हें ही मिलीं।' यह सुनकर उस ब्राह्मण का सिर लज्जा से झुक गया और उसने उनसे क्षमा माँगी।

ईश्वर पर अनुराग – जिस प्रकार पूर्व की ओर जाने पर पश्चिम स्वत: दूर होता जाता है, वैसे ही ईश्वर पर अनुराग होने पर मनुष्य के काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि शत्रु स्वत: दूर हो जाते हैं। ईश्वर पर अनुराग होने पर मन सदैव उच्च भूमि पर निवास करता है और तब मन राग-द्वेष आदि में लिप्त नहीं होता। ईश्वर पर अनुराग होना, इतना सरल कार्य भी नहीं है, पर जब तक ईश्वर पर अनुराग नहीं होता, तब तक व्यक्ति को इसके लिए साधना करनी पड़ती है। यदि किसी को ईश्वर पर अनुराग न भी हुआ हो, पर यदि वह आध्यात्मिक गतिविधियों से युक्त रहे, तो उसे कुछ अंश में इसका लाभ अवश्य मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''बाघ जैसे दूसरे पशुओं को खा जाता है, वैसे 'अनुरागरूपी बाघ' काम-क्रोध आदि रिपुओं को खा जाता है। एक बार ईश्वर पर अनुराग होने से फिर काम-क्रोध आदि नहीं रह जाते। गोपियों की ऐसी ही अवस्था हुई थी। श्रीकृष्ण पर उनका ऐसा ही अनुराग था।''[१]

विवेक-विचार का सहारा लेना – एक बालक रोटी का टुकड़ा रोटी के बीच के हिस्से से निकालकर खाने लगा, जिससे रोटी लुंज-पुंज हो गई। यह देखकर उसे डाँटते हुए माता बोली, तू भी चाणक्य जैसा ही मूर्ख है। उस समय चाणक्य चन्द्रगुप्त के साथ गुप्तचर के वेश में जा रहे थे। गुरु की निन्दा सुनते ही चन्द्रगुप्त बिगड़ने लगा। पर चाणक्य ने समझाया, जो निन्दक की बात ध्यान से सुनते हैं, उनका भला ही होता है। दोनों उस स्त्री के पास गए। चाणक्य ने पूछा – माताजी चाणक्य किसलिए मूर्ख है? स्त्री बोली – भाई, वह बीच के देशों को जीतने का प्रयास करता है और जीते हुए राज्य फिर स्वतन्त्र हो जाते हैं, यदि वह सीमावर्ती राज्य पहले जीत ले, तो उसकी किलेबंदी मजबूत हो सकती है। मगध का निर्माण इसी सिद्धान्त पर हुआ। अपनी गलती को ठीक करके जब चाणक्य उस स्त्री के कथानुसार चले, तो मौर्य साम्राज्य का ऐतिहासिक स्वरूप बना।

यदि हमें जीवन के किसी पड़ाव पर क्रोध आये, तो भी हमें विवेक-विचार से काम लेना चाहिए। क्रोध के समाधान के लिए सदैव हमें अपने विवेक-विचार को जागृत रखना चाहिए। जीवन के किसी भी क्षण में आवेग में आकर निर्णय नहीं लेना चाहिए। बल्कि मन को शान्त रखकर सूझ-बूझ से निर्णय लेना चाहिए। विवेक-विचार से निर्णय लेनेवाला व्यक्ति सफल जीवन जीता है और उसके निर्णय उचित होते हैं।

दूसरों की स्थिति समझना – यदि हमें किसी पर कभी क्रोध आए, तो हम अपने आप को उस व्यक्ति के स्थान

पर रखकर देखें, तो हम बेहतर निर्णय लेने में सक्षम हो सकेंगे। क्योंकि जब हम किसी परिस्थिति में स्वयं को रख कर देखते हैं, तो सही निर्णय लेने में सरलता हो जाती है। लोगों पर क्रोध के बाण छोड़ने के पश्चात् उस परिस्थिति में परिवर्तन ला पाना कठिन हो जाता है या कहें असम्भव हो जाता है। क्योंकि क्रोध से आहत व्यक्ति समय मिलने पर उसका या तो प्रतिशोध ले सकता है अथवा उसके कार्य की गुणवत्ता कम हो सकती है। परन्तु यदि हम उस व्यक्ति को सकारात्मक विचार देकर परिवर्तित करने का प्रयास करें, तो उसके सकारात्मक परिणाम अवश्य निकलेंगे।

अन्य लोगों के द्वारा परेशान न होना – कभी-कभी हममें क्रोध का चिन्ह भी नहीं होता, परन्तु कुछ लोग हमारे पीछे लगकर हमें परेशान करने लगते हैं, जिससे हमारी क्रोधाग्नि भड़क उठती है। ऐसी परिस्थितियों में हमें धैर्य के साथ काम लेना चाहिए। विपरीत परिस्थितियों में भी स्वयं को अचल शान्ति में स्थापित रखना धैर्यवान और बुद्धिमान व्यक्ति की पहचान होती है।

पैठण में एकनाथ महाराज के निवास स्थान से गोदावरीजी की ओर जानेवाले मार्ग में एक स्थान पर एक धर्मशाला-सी है। वहाँ एक यवन रहा करता था। वह उस मार्ग से आने-जाने वाले हिन्दुओं को बहुत तंग किया करता था। एकनाथ महाराज जब स्नान करके लौटते, तब वह उनके ऊपर मुँह से पिचकारी छोड़ देता। इससे महाराज को किसी-किसी दिन चार-चार, पाँच-पाँच बार स्नान करना पड़ता था। जहाँ वे स्नान करके लौटने लगते कि यह उन्मत्त मनुष्य फिर उन पर थूकता और महाराज फिर स्नान करने जाते। इस बदमाशी से कोई भी आदमी चिढ़ जाता, पर एकनाथ महाराज की शान्ति बहुत विलक्षण थी। एक दिन इसी प्रकार वह महाराज पर बार-बार थूकता गया और महाराज स्नान कर पुन: स्नान करने जाते। इस तरह कहते हैं कि १०८ बार हुआ। तथापि महाराज की शान्ति भंग नहीं हुई। क्रोध और शान्त सहिष्णुता का यह द्वन्द्व देखने के लिए हजारों लोग वहाँ जुटे थे। अन्त में यवन थक गया, लज्जित हुआ और महाराज के चरणों पर लोट गया। जब हम किसी के उलाहने पर प्रत्युत्तर देने लगते हैं, तभी यह सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है। तब दोनों ओर की लगी हुई क्रोधाग्नि, दोनों को ही भस्म कर देती है। परन्तु यदि हम अपनी शान्ति को भंग न होने दें, तो किसी भी व्यक्ति के द्वारा यह सम्भव नहीं है कि वह हमारी शान्ति भंग कर सके।

सन्त एकनाथ महाराज

नश्वर जगत का विचार – इस जगत में सब कुछ नश्वर है। अन्त में एक दिन सभी मृत्यु को प्राप्त होंगे ही, फिर इस नश्वर जगत के लिए इतना क्रोधित होने की आवश्यकता क्यों है? अधिक से अधिक परिणाम क्या होगा? हम जिस जगत के लिए व्याकुल हो रहे हैं, उसे एक दिन हमें छोड़कर जाना ही होगा, तब इसके लिए हम आज या कल क्रोधित होकर अपने जीवन को नीरस क्यों बनाएँ? एक घर में किसी वृद्ध की मृत्यु होनेवाली थी। घर के सभी सदस्य उनके समक्ष बैठे हुए थे कि तभी उस वृद्ध की दृष्टि एक दिये पर पड़ी और वह चिल्ला उठा – बत्ती को इतना ऊपर चढ़ा दिया है, बत्ती और तेल अधिक खर्च होगा। इतना कहकर उसकी मृत्यु हो गई। कैसी विडम्बना है कि जीवन के अंतिम समय में भी वह इस नश्वर जगत की चिन्ता करते हुए चल बसा ! हम अपने अभ्यास के दास होते हैं, अत: हम ऐसा अवश्य कर सकते हैं कि हम इस नश्वर जगत का बारम्बार विचार करें, जिससे हमें अपने क्रोधरूपी संस्कार को बदलने में सहायता मिले।

प्रत्युत्तर न देना – जब कोई व्यक्ति बहुत क्रोधित अवस्था में हो, तो उसके साथ यदि दूसरा व्यक्ति भी क्रोधित हो जाता है, तो क्रोध का स्वरूप बढ़ता ही जाता है। क्रोध फुटबॉल की भाँति होता है। जैसे एक ने जोर से फुटबॉल को मारा तो दीवार से टकराकर वह उतने ही वेग से वापस आता है। ठीक उसी प्रकार एक पक्ष के क्रोध करने पर फलस्वरूप दूसरा पक्ष भी क्रोधित हो जाता है और यह सिलसिला चलने लगता है। यदि कोई शराबी या पागल हम पर चिल्लाने लगता है, क्रोधित हो जाता है अथवा झगड़ा करता है, तो हम उसे पागल समझकर उसके मुँह नहीं लगते, उससे दूर हो जाते हैं। उसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति भी एक पागल की भाँति ही होता है। यदि हम उसके क्रोध के उत्तर में वहाँ से दूर चले जाएँ या शान्त रहें, तो हमारे मन की शान्ति अवश्य बनी रहती है।

चिन्तन करें – चिन्तनशील व्यक्ति बनें। जो व्यक्ति चिन्तनशील होता है, उसके स्वयं के अच्छे विचार होते हैं, जो उसके व्यक्तित्व को सुदृढ़ बनाते हैं। चिन्तनशील व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान सहजतापूर्वक निकाल लेता है। चिन्तनशील व्यक्ति सुलझा हुआ भी होता है। क्योंकि चिन्तन मात्र कोई एक पक्ष नहीं होता, बल्कि उसके साथ अनुभवों की शृंखला उसका सहयोग करती है। यदि हम चिन्तनशील हों, तो अपनी अच्छी-बुरी आदतों को हम स्वयं अपने चिन्तनशील बल से परिवर्तित कर सकते हैं।

प्रार्थना – भारतीय संस्कृति में सर्वमंगल की कामना सदैव की जाती है। किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व अथवा कार्य समाप्त होने के पश्चात् सर्वमंगल की कामना अवश्य की जाती है। यह किसी के प्रति हमारे मन में ईर्ष्या, द्वेष या क्रोध की भावना पनपने नहीं देती। जो व्यक्ति सबके हित की कामना करे, वह दूसरों का अहित नहीं कर सकता, इस प्रकार सर्वमंगल की कामना से हमारे हृदय का विकास होता है और हम वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव से शान्तिपूर्वक रह सकते हैं। अत: हम प्रार्थना करें – **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।'** अर्थात् सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सभी मंगल देखें और किसी को भी दुख का भागी न बनना पड़े।

सत्संगति – संगति का हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि हम क्रोधी प्रवृत्ति के लोगों का संग करें, तो उनके साथ रहते-रहते हम भी क्रोधी प्रवृत्ति के बनने लगते हैं। चूँकि क्रोधी लोग अपने स्वभाव को उचित ठहराते हैं, इसलिये लगता है कि हम ठीक चल रहे हैं। वहीं शान्तिपूर्वक रहनेवाले लोगों का संग करने पर हम भी शान्ति से ही रहना पसन्द करते हैं।

प्रेम और शान्ति का अभ्यास – हम जहाँ भी रहें हमें अपने चारों ओर प्रेम और शान्ति का वातावरण तैयार करना चाहिए। यदि सदैव हमारे बीच प्रेम और शान्ति का प्रवाह बहता रहे, तो हमारे आस-पास आनेवाले सभी लोग शान्तिप्रिय ही बन जाएँगे। यदि कभी हमारे भीतर क्रोध का उद्रेक भी हो, तो हमें तुरन्त सँभलकर इसके विपरीत प्रेम और शान्ति का भाव लाना चाहिए, ऐसा अभ्यास करते-करते हम प्रेम और शान्ति में प्रतिष्ठित हो जाएँगे।

मौन व्रत – कुछ लोगों का अपने क्रोध पर अंकुश लगा पाना अत्यन्त कठिन होता है। उनका इतना दृढ़ अभ्यास होता है कि वे स्वत: इस प्रवृत्ति को नहीं छोड़ सकते, ऐसे लोगों के लिए मौन व्रत एक सरल उपाय है। सप्ताह में या महीने में किसी एक दिन वह व्यक्ति मौन व्रत लेकर मन ही मन मात्र भगवान का नाम ले। इस प्रकार अभ्यास करते-करते उसका क्रोध कम होने लगेगा। मौन व्रत सदैव संयम में सहायक होता है अथवा कहें कि संयम के द्वारा ही व्रत सम्भव है। इस प्रकार संयम के द्वारा क्रोध पर अंकुश लगने लगेगा और धीरे-धीरे संस्कार परिवर्तित होने लगेंगे।

अभ्यास – यदि क्रोध करने का हमारा स्वभाव होगा, तो क्रोध बारम्बार आ ही जाएगा। परन्तु ऐसी स्थिति में हमें विचलित नहीं होना चाहिए और अपने संस्कार को परिवर्तित करने के लिए थोड़ा प्रयास करना चाहिए। यथासम्भव अपने क्रोध को सन्तुलित करने का प्रयास करना चाहिए और धीरे-धीरे ऐसा अभ्यास करते-करते हम एक दिन अवश्य ही इस अभ्यास में सफल होंगे। कोई भी स्वभाव किसी आदत के दोहराने पर बनता है। यदि बुरे संस्कार का अभ्यास होने के कारण बुरा स्वभाव बन सकता है, तो अच्छे संस्कार के अभ्यास के द्वारा अच्छे संस्कार भी बनाये जा सकते हैं।

शान्ति का अर्थ शीत युद्ध नहीं – शान्ति का अर्थ शीत युद्ध नहीं है, जहाँ हमारे मन में किसी के प्रति द्वेष तो पल रहा हो, पर हम चुप रहें, यह भी शान्ति का द्योतक नहीं है। क्योंकि तब मन के भीतर एक भयंकर तूफान चलता रहता है। बल्कि इस प्रकार की दिखनेवाली शान्ति क्रोध से भी अधिक भयावह होती है। शीत युद्ध की स्थिति में चाहे हम उस क्रोध को व्यक्त करें या ना करें, अंदर का पल रहा क्रोध प्रकाशित हो या ना हो, उस क्रोध के दुष्परिणाम हमें भुगतने ही पड़ेंगे। हमारा उद्देश्य शान्त स्थिति को प्राप्त करना है, जहाँ हम किसी पर क्रोधित न हों, साथ ही साथ हमारे मन के अंदर भी अचल शान्ति स्थापित रहे।

टालना – जैसाकि श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द लोगों से कहते थे – जब आप किसी को उसके पत्र के उत्तर में बड़े कड़े शब्दों में पत्र लिखते हैं, तो अपना पत्र एक या दो दिन के लिए तकिए के नीचे रख दें। उसके बाद उस पत्र को देखेंगे, तो स्वयं उसमें संशोधन करेंगे। क्योंकि जब आपने लिखा था, उस समय आप क्रोधाग्नि की ज्वाला

में थे और वह धीरे-धीरे विलुप्त हो जाती है। अगर आपने पहले ही चिट्ठी भेज दी होती, तो आप स्वयं सोचते कि मैंने ऐसा क्यों किया? इसने पूरी स्थिति को खराब कर दिया है।'[२] कहते हैं, शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए और अशुभ कार्य में जितना विलम्ब हो, उतना ही अच्छा। क्योंकि यदि हम अशुभ कार्य में विलम्ब करने लगेंगे, तो सम्भवत: हमारा विवेक जागृत हो और हम उस अशुभ कार्य को करने से बच जाएँ। क्रोध के आवेश में रहने पर मन में आनेवाले विचारों या संकल्पों को टालना बहुत ही हितकर होता है।

क्रोध के विपरीत भावों को जगाएँ – प्रेम, शान्ति, विनम्रता, क्षमा, सहयोग, सहनशीलता आदि भावों को हमें पोषित करना होगा। इन भावों को हम जितना अपने जीवन में सीचेंगे, उतने ही हमारा क्रोध शान्त होगा। प्रेम में कभी द्वेष का अंश नहीं होता है, अत: वहाँ क्रोध नहीं होता। यदि माँ अपनी संतान से प्रेम करती है और उसकी किसी त्रुटि पर उसे दंड भी देती है, तो भी उसके अन्दर प्रेम की फल्गु नदी प्रवाहित होते रहती है। बाहर से क्रोध दिखने पर भी वस्तुत: वह क्रोध का नाटक होता है।

इसी प्रकार शान्ति जीवन की संजीवनी शक्ति है, जो वर्षों से चल रहे युद्ध, वैर आदि को धो डालता है। भगवान बुद्ध इसके जीवन्त उदाहरण हैं। उन्होंने शान्ति के मार्ग पर चलकर क्रोधी, दुष्ट, अत्याचारियों के जीवन में भी शान्ति का बीज बोया था और वे फलित भी हुए थे। शान्ति का अनुसरण हमारे क्रोध को समाप्त कर देगा।

जब हम किसी से विनम्रतापूर्वक वार्तालाप करते हैं, तो हमारे सामने क्रोधित व्यक्ति भी शान्त हो जाता है। पर यदि हम भी क्रोधित हो जाएँ, तो बात और अधिक बिगड़ जाती है। त्रेता युग में ऐसा प्रसंग आता है, जब भगवान श्रीराम के हाथों शिव-धनुष टूट जाता है और भगवान परशुराम आते हैं। परशुराम अत्यन्त क्रोधित होते हैं और धनुष-भंग करनेवाले का वध करना चाहते हैं। तब श्रीराम का पक्ष लेते हुए लक्ष्मणजी भी क्रोधित हो जाते हैं। इस प्रकार स्थिति और गंभीर हो जाती है। उपस्थित सभी लोग भयभीत हो जाते हैं। पर श्रीराम बड़ी शान्ति से परशुराम से वार्तालाप करते हैं और परशुराम को नतमस्तक कर देते हैं। पूरे प्रसंग में श्रीराम कहीं भी उद्विग्न नहीं होते, बल्कि गंभीर हो रही स्थिति को बड़ी सरलता से सुलझा लेते हैं।

इतिहास साक्षी है कि दंड से अधिक व्यक्ति का परिवर्तन क्षमा से हुआ है। मनुष्य से भूल तो होती है। जो कार्य करेगा, उससे भूल तो होगी ही पर जो उन्हें विचारपूर्वक क्षमा कर देते हैं वे स्वयं भी महान बन जाते हैं और दूसरों को भी अच्छा बनने का अवसर देते हैं।

मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी भूलों को छिपाने का प्रयास करते हैं और दूसरों की भूलों को बड़ा करके दिखाने का प्रयास करते हैं। किन्तु यदि हममें सहयोग की भावना हो, तो हम दूसरों को सहयोग करके उनकी भूलों का समाधान कर सकते हैं। दूसरों की भूलों पर क्रोधित होकर हम महान नहीं बन सकते, बल्कि सहयोग के द्वारा हम महानता की सीढ़ी भी चढ़ते हैं और दूसरों को उनके स्तर से ऊपर भी उठा लेते हैं।

यदि अपना भाई पागल हो जाये, तो क्या हम उसे सड़क के किनारे छोड़ आएँगे? नहीं, क्योंकि वह हमारा भाई है। जिस व्यक्ति में थोड़ी भी मनुष्यता होगी, वह कभी ऐसा नहीं करेगा। ठीक वैसे ही यदि हमारा भाई बहुत क्रोधित हो जाये, तो क्या हम उससे नाता तोड़ लेंगे? नहीं, बल्कि वहाँ हमें सहनशीलता का परिचय देना होगा। श्रीमाँ सारदा देवी कहती हैं, 'जो सहे, वही रहे, जो न सहे, वह नाश होये'। सहनशीलता से ही संघ, परिवार आदि सुचारु रूप से चला करते हैं। इस प्रकार जिनसे क्रोध की उत्पत्ति होती है, उनके विपरीत भावों का पोषण करके भी हम क्रोध से बच सकते हैं।

आध्यात्मिकता सर्वोत्तम उपाय – एक ही परिस्थिति में एक व्यक्ति अत्यन्त क्रोधित हो जाता है, वहीं दूसरा व्यक्ति उसी स्थिति में अचल शान्ति में रहता है। वस्तुत: क्रोध की प्रवृत्ति का होना और न होना हमारे व्यक्तिगत संस्कारों के कारण होते हैं। जैसे-जैसे व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति करता जाता है, उसकी क्रोध की प्रवृत्ति क्षीण होती जाती है, हृदय उदार होता जाता है। पुराणों में ऐसा उल्लेख आता है कि शृंगी ऋषि के आश्रम में हिंसक पशु भी बिना किसी वैर-भाव के साथ-साथ विचरण किया करते थे। बुद्ध के समक्ष अंगुलिमाल आकर अपनी हिंसावृत्ति भूल गए और बुद्ध के अनुयायी बन गए।

गीता का उपाय – सुनने में सम्भवत: हमें बहुत ही आश्चर्य हो, पर भगवान युद्धभूमि में अर्जुन से क्रोध से हानि

के सन्दर्भ में कह रहे हैं। युद्धभूमि तो क्रोधभूमि ही होती है, जहाँ योद्धा का अपने शत्रुओं पर क्रोधित होना स्वाभाविक होता है, किन्तु ऐसे समय में भगवान अपने श्रीमुख से अर्जुन को क्रोध के नकारात्मक प्रभावों और उसके गूढ़ रहस्यों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं –

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।[३]

अर्थात् विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।

जिन पुरुषों को परमात्मा की प्राप्ति हो गई है, उनके लिए तो विषय-चिन्तन से आसक्ति होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। परन्तु अन्य मनुष्य के लिए इसी आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है और उस कामना में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित होने पर क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यही कामना से क्रोध का उत्पन्न होना है। जिस मनुष्य के अन्त:करण में क्रोध की वृत्ति जागृत होती है, उस समय उसके अन्त:करण में विवेक शक्ति का अत्यन्त अभाव हो जाता है, वह कुछ भी आगे-पीछे नहीं सोच सकता। क्रोध के वश में होकर वह जिस कार्य में प्रयुक्त होता है, उसके परिणाम का उसको कुछ भी विचार नहीं रहता, यही क्रोध से उत्पन्न समूह का अत्यन्त मूढ़भाव का स्वरूप है। उसकी स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। उसे यह ध्यान नहीं रहता कि किस मनुष्य के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? मुझे क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? मैंने अमुक कार्य किस प्रकार करने का निश्चय किया था और अब क्या कर रहा हूँ? इसलिए पहले सोची-विचारी हुई बातों को वह काम में नहीं ला सकता, उसकी स्मृति छिन्न-भिन्न हो जाती है। इस प्रकार उसे अपने कर्तव्य का निश्चय करने की शक्ति न रहने के कारण बुद्धि नष्ट हो जाती है। ऐसा होने से मनुष्य अपने कर्तव्य को त्यागकर अकर्तव्य में प्रवृत्त हो जाता है। उसके व्यवहार में कठोरता, कायरता, हिंसा, प्रतिहिंसा, जड़ता और मूढ़ता आदि दोष आ जाते हैं तथा शीघ्र ही उसका पतन हो जाता है।

कुछ इसी प्रकार का उल्लेख वे एक अन्य श्लोक में भी देते हैं –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।[४]

अर्थात् रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत भोगों से कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषय में वैरी जान।

वस्तुत: काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। अत: काम के नाश के साथ ही उसका नाश अपने आप ही हो जाता है। परन्तु कोई यह न समझ ले कि पापों का हेतु केवल काम ही है, क्रोध का उनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसलिए प्रकरण के प्रारम्भ में काम के साथ क्रोध को भी (काम एष क्रोध एष) गिना दिया गया है।

उपरोक्त तथ्य स्पष्ट रूप से क्रोध के घातक प्रभाव को स्पष्ट करते है। परन्तु गीता के कुछ श्लोक हमारी दृष्टि को बदल देते हैं, जिससे हम क्रोध से बच सकते हैं, जिनमें भक्ति का भाव अत्यन्त सरल मार्ग है। श्रीभगवान कहते हैं – **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**[५]

अर्थात् 'समस्त प्राणियों के हृदय में वे अन्तर्यामी परमेश्वर ही निवास करते हैं।' यदि ईश्वर सबमें हों, तो हम भक्तिमार्ग के पथिक किस पर क्रोध करें।

यदि ज्ञानी का लक्षण देखें, तो ज्ञानी वह है, जो समस्त स्थितियों में सम भाव रखता है –

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।[६]

अर्थात दुखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा नि:स्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गए हैं, ऐसा व्यक्ति स्थिर बुद्धि कहा जाता है।

क्रोधरहित होना और स्वयं की रक्षा – क्रोधरहित होने का अर्थ हमें कभी इस प्रकार नहीं सोच लेना चाहिए कि हम पर अत्याचार हो रहे हों और हम चुपचाप सहन करते रहें। श्रीरामकृष्ण देव ने इस सन्दर्भ में एक अच्छा उदाहरण दिया है, वह इस प्रकार है – 'किसी जंगल में कुछ चरवाहे गौएँ चराते थे। वहाँ एक बड़ा विषधर सर्प रहता था। उसके

डर से लोग बड़ी सावधानी से आया-जाया करते थे। किसी दिन एक ब्रह्मचारीजी उसी रास्ते से आ रहे थे। चरवाहे दौड़ते हुए उनके पास आए और उनसे कहा 'महाराज, इस रास्ते से न जाइये। यहाँ एक साँप रहता है। वह बड़ा विषधर है।' ब्रह्मचारीजी ने कहा – 'तो क्या हुआ, बेटा, मुझे कोई डर नहीं, मैं मंत्र जानता हूँ।' यह कहकर ब्रह्मचारी जी उसी ओर चले गए। डर के मारे चरवाहे उनके साथ न गए। इधर साँप फन उठाए झपटता चला आ रहा था, परन्तु पास पहुँचने के पहले ही ब्रह्मचारीजी ने मन्त्र पढ़ा। साँप आकर उनके पैरों पर लोटने लगा। ब्रह्मचारीजी ने कहा – 'तू भला हिंसा क्यों करता है? ले, मैं तुझे मन्त्र देता हूँ। इस मन्त्र को जपेगा, तो ईश्वर पर भक्ति होगी, तुझे ईश्वर के दर्शन होंगे; फिर यह हिंसावृत्ति न रह जाएगी। यह कहकर ब्रह्मचारीजी ने साँप को मन्त्र दिया। मंत्र पाकर साँप ने गुरु को प्रणाम किया और पूछा – भगवन्, मैं क्या साधना करूँ? गुरु ने कहा – इस मन्त्र का जप कर और हिंसा छोड़ दे। चलते समय ब्रह्मचारीजी फिर आने का वचन दे गए।

इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। चरवाहों ने देखा कि साँप काटता नहीं, ढेला मारने पर भी क्रोधित नहीं होता, केचुँए की तरह हो गया है। एक दिन चरवाहों ने उसके पास जाकर पूँछ पकड़कर उसे घुमाया और वहीं पटक दिया। साँप के मुँह से खून बह चला, वह बेहोश पड़ा रहा; हिल-डुल तक न सकता था। चरवाहों ने सोचा कि साँप मर गया और यह सोचकर वहाँ से भी चले गए। जब बहुत रात बीती, तब साँप होश में आया और धीरे-धीरे अपने बिल के भीतर गया। देह चूर-चूर हो गई थी, हिलने तक की शक्ति नहीं रह गई थी। बहुत दिनों के बाद जब चोट कुछ अच्छी हुई, तब भोजन की खोज में बाहर निकला। जब से मारा गया, तब से केवल रात को ही बाहर निकलता था। हिंसा करता ही नहीं था। मात्र घास-फूस, फल-फूल खाकर रह जाता था।

सालभर बाद ब्रह्मचारी फिर आए। आते ही साँप की खोज करने लगे। चरवाहों ने कहा, 'वह तो मर गया है', पर ब्रह्मचारीजी को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वे जानते थे कि जो मन्त्र वे दे गए हैं, वह जब तक सिद्ध नहीं होगा, तब तक उसकी देह छूट नहीं सकती। ढूँढते हुए उसी ओर अपने दिए हुए नाम से साँप को पुकारने लगे। बिल से गुरुदेव की आवाज सुनकर साँप निकल आया और बड़े भक्ति भाव से प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी ने पूछा, 'क्यों कैसा है?' उसने कहा, 'जी अच्छा हूँ।' ब्रह्मचारीजी – 'तो तू इतना दुबला क्यों हो गया है? साँप ने कहा – 'महाराज, जब से आप आज्ञा दे गए, तब से मैं हिंसा नहीं करता; फल-फूल, घास-पात खाकर पेट भर लेता हूँ; इसीलिए शायद दुबला हो गया हूँ।' सत्त्वगुण बढ़ जाने के कारण किसी पर क्रोध नहीं कर सकता था। इसी से मार की बात भी वह भूल गया था। ब्रह्मचारीजी ने कहा, 'मात्र नहीं खाने ही से किसी की यह दशा नहीं होती, कोई दूसरा कारण अवश्य होगा, तू अच्छी तरह सोच तो।' साँप को चरवाहों की मार याद आ गई। उसने कहा – हाँ महाराज, अब याद आयी, चरवाहों ने एक दिन मुझे पटक-पटककर मारा था। उन अज्ञानियों को तो मेरे मन की अवस्था ज्ञात थी नहीं। वे क्या जानें कि मैंने हिंसा करना छोड़ दिया है!' ब्रह्मचारीजी बोले – 'राम-राम, तू ऐसा मूर्ख है ! अपनी रक्षा करना भी तू नहीं जानता? मैंने तो तुझे काटने को ही मना किया था, पर फुफकारने से तुझे कब रोका था? फुफकार मारकर उन्हें भय क्यों नहीं दिखाया?'

'इस तरह दुष्टों के पास फुफकार मारना चाहिए, भय दिखाना चाहिए, जिससे कि वे अनिष्ट न कर बैठें; पर उनमें विष नहीं डालना चाहिए, उनका अनिष्ट नहीं करना चाहिए।'[७] ○○○ **(समाप्त)**

सन्दर्भ – १. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, खंड २, पृष्ठ १८१, (८ अप्रैल, १८८३) **२.** यूनिवर्सल मैसेज ऑफ भगवद्गीता : स्वामी रंगनाथानन्द, पृ.९८ **३.** गीता २/६२-६३ **४.** गीता ३/३७ **५.** गीता १८/६१ **६.** गीता २/५६ **७.**श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, ५ मार्च, १८८२

श्रीरामकृष्ण-गीता (२९)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

स्थिरदृष्टिः वकः कश्चित् कस्मिंश्चित्तु जलाशये।
मन्थरं याति तत्रैव मीनमेकं दिधीर्षया।।१८।।
न पश्यन् व्याधमेकं स पश्चात्तं यो हि लक्षते।
दृष्ट्वेदमवधूतस्तं नमस्कृत्याह सारसम्।।१९।।

– किसी जलाशय में एक बगुला धीरे-धीरे एक मछली की ओर लक्ष्य स्थिर कर उसे पकड़ने जा रहा है। उसके पीछे एक व्याध उस बगुले को निशाना बना रहा है, किन्तु बगुला उधर देख तक नहीं रहा है। तब अवधूत ने सारस को प्रणाम करके कहा –

यदाहमुपवेक्ष्यामि ध्यानार्थं मद्गुरो तदा।
त्वमिवान्यत्रदृष्टिं न किमपि करवाणि भोः।।२०।।

– मैं जब ध्यान करने बैठूँ, तब हे गुरुदेव ! तुम्हारे जैसा ही अन्यत्र कहीं न देखूँ।

मधुकरोऽवधूतस्यासीदेकोऽन्यतमो गुरुः।
क्लेशेन दीर्घकालेनाहार्षीत स महतो मधू।।२१।।
विदीर्य मधुकोषं तदभोजि चेत्य कुतो नरः।
दर्पेन संचितं तस्य धनं भूतं न भूङ्क्तये।।२२।।

– अवधूत की एक दूसरी गुरु मधुमक्खी थी। मधुमक्खी बहुत दिनों से कष्ट से मधु का संग्रह करने गयी। कहीं से एक व्यक्ति आकर मोम तोड़कर मधु पी गया। वह बहुत दिनों से संचित अपने धन का उपयोग नहीं कर सकी।

अवधूत अवलोक्येतद् भूयो भूयः प्रणम्य तम्।
हे भगवन् गुरुस्त्वं मे इत्यभाषत षट्पदम्।।२३।।
नमस्तुभ्यं पुनर्भूयः संसारे भृंगराज हे।
सम्यक्त्वानुशिष्टोऽहं संचितार्थस्य का गतिः।।२४।।

– अवधूत ने यह देखकर मधुकर को प्रणाम कर कहा – हे भगवन् ! तुम्ही हमारे गुरु हो। तुम्हें बार-बार नमस्कार है। संचय करने का क्या परिणाम होता है, मैंने तो आपसे ही सीखा। **(क्रमशः)**

गीता जीवन का आधार सखे !

व्यग्र पाण्डेय, राजस्थान

हिन्दू धर्म का प्राण जो, सब दुखों का त्राण जो ।
पढ़ लिया धारण किया, भगवद्गीता ज्ञान जो ।।१।।
कृष्ण मुख से जो निकला, ऐसा अद्‌भुत विचार जो ।
योग की शिक्षा समाहित, पहुँचाती उस पार जो ।।२।।
पार्थ को रण-क्षेत्र में जब, मोह ने तत्काल घेरा ।
हो विमुख कर्तव्य पथ से, करने लगा जो व्यर्थ हेरा।।३।।
गांडीव रखा धरती पर जब, समझाये समझ नहीं आया ।
चक्षु अलौकिक दे अर्जुन को, विराट स्वरूप दिखलाया ।।४।।
तब रथी श्रीकृष्ण ने, ज्ञान गीता का उतारा ।
मोह ग्रसित कौन्तेय को, दे दिया उपदेश प्यारा ।।५।।
वेद उपनिषद सार इसमें, धर्म का सुविचार इसमें ।
करनेवाला मैं स्वयं हूँ, तू निमित्त का भार इसमें ।।६।।
धर्म गीता कर्म गीता, सच मर्म गीता ज्ञान है ।
जिसने न जाना इसे, वह स्वयं से अंजान है।।७।।
नमन करता रहा जगत, इसके अपूर्व ज्ञान को ।
भटकने ना दे कभी जो, सुपथ से इंसान को ।।८।।
साक्षात् कृष्ण स्वरूप गीता, जगत अमृत-रूप गीता ।
जिसने पिया धन्य हो गया, देश धर्म प्रारूप गीता ।।९।।
जब जीवन में हो ऐसी अवस्था, क्या सही क्या गलत है अब।
फिर बैठ के पढ़ लो गीता को, असमंजस मिटे पल में तब।।१०।।
गीता है शास्त्रों का सार, गीता सनातन का प्रचार ।
आत्म-परमात्म मिलन गीत, जीवन में लाती है सुधार।।११।।
पढ़ करके इसे विचार सखे, जो है सुख की आगार सखे।
ये शरीर अधीरता को तज दे, फिर नहीं मृत्यु की मार सखे।।१२।।
गीतानुसार आचरण तेरे, कर लेंगे कष्ट हरण तेरे ।
बन पार्थ और बढ़ जा आगे, रोक मत बढ़ा चरण तेरे।।१३।।
श्वाँस-श्वाँस में हो गीता, ये श्रीकृष्ण नाम की संहिता ।
होता सफल जीवन उसका, शिक्षा पर इसकी जो जीता ।।१४।।
गीता जीवन का आधार सखे, कर इस पर कुछ विचार सखे ।
लेकर डुबकी हो ले पवित्र, हर हर गीते मन धार सखे।।१५।।

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३३)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

सेवक – हमारे मणीन्द्र महाराज कहते हैं कि संन्यास गुरु ही सच्चे गुरु हैं।

महाराज – स्वामीजी का मिशन, ठाकुर का संघ ही इस युग की वास्तविक बात है। काम करते-करते मनुष्य धक्के खा-खाकर सुधर जाता है, कार्य ही महत्त्वपूर्ण है। तुम काम में लगे रहो, संघ में दस-बीस लोगों के साथ रहने पर मनुष्य उन्नत होता है।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन, इन तीनों के ठीक नहीं रहने पर, कोई चाहे कितना भी चतुर क्यों न हो, पतनोन्मुख हो सकता है। एक व्यक्ति ने कितनी सेवा की, कितना प्रेम-स्नेह पाया ! किन्तु निदिध्यासन नहीं रहने पर अन्दर ही अन्दर विपथगामी होकर घर लौट गया।

सेवक – अच्छा महाराज, आप इस समय कैसे बहुत दृढ़ता से, अच्छे ढंग से बातें करते हैं ! किन्तु दिन के समय इतने ऊँघते क्यों हैं? कुछ बोलते भी नहीं हैं और सुनना भी नहीं चाहते हैं।

महाराज – ऐसा ही होता रहता है, सुना नहीं है – '**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु**'?

सेवक – दिन के समय क्या करते हैं।

महाराज – माँ का चिन्तन करता हूँ।

सेवक – किस प्रकार से?

महाराज – देखता हूँ कि माँ सामने बैठी हैं। पैर फैलाकर उद्बोधन (आश्रम) में बैठी हैं, इसीलिए तो उद्बोधन का वर्णन सुनना चाहता हूँ।

सेवक – माँ को किस मुद्रा में देखते हैं?

महाराज – माँ देदीप्यमान रूप में दिखती हैं, वे ठीक सामने बैठी दिखती हैं।

सेवक – क्या रक्त-मांस युक्त शरीर में?

महाराज – नहीं, ठीक वैसा नहीं, तथापि अत्यधिक सुस्पष्ट रूप से।

सेवक – सामने बैठी रहती हैं कि हृदय के भीतर?

महाराज – हृदय के भीतर ही, तथापि देखता हूँ, मानो सामने हैं।

सेवक – माँ की मूर्ति हिलती-डुलती है?

महाराज – हाथ थोड़ा-थोड़ा हिलता है, मानो कह रही हैं कि मुक्ति चाहने से ही दी जा सकती है, किन्तु भक्ति देना सहज नहीं है, माँ हाथ हिलाकर (ऐसा) कहती हैं।

एक दूसरी बात माँ बहुत सुस्पष्ट रूप से कहती हैं – ठाकुर हैं, ठाकुर हैं, ठाकुर हैं।

सेवक – दिन में कब देखते हैं?

महाराज – सारे दिन ही देखता हूँ, इच्छा मात्र से ही देखता हूँ, माँ सिर के निकट बैठी हैं।

सेवक – माँ कुछ प्रश्नोत्तर करती हैं?

महाराज – नहीं।

सेवक – आप अपने दुख की बात नहीं कहते?

महाराज – नहीं, वह सब कहने की इच्छा नहीं होती। माँ को केवल देखता हूँ।

सेवक – ठाकुर को देखते हैं?

महाराज – हाँ, 'रामकृष्ण' शब्द कानों में आते ही मन में उठता है – ठाकुर की यही मूर्ति, बैठे हुए दोनों हाथ परस्पर संलग्न, कंधे पर धोती का छोर।

सामने देदीप्यमान दिखते हैं, किन्तु माँ की तरह स्पष्ट नहीं दिखते।

सेवक – स्वामीजी का?

महाराज – हाँ, स्वामीजी की परिव्राजक मूर्ति, हाथ में दण्ड, किन्तु उतना देदीप्यमान नहीं, ऐसी ही छवि मन में आती है।

इसके अतिरिक्त महाराज लोगों का ही चित्र मन में उठता है।

सेवक – ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी अनुभव-शक्ति दिनोदिन बढ़ती जा रही है।

महाराज – हाँ, वह बढ़ रही है। मूर्ति स्पष्टतर होती रहती है। तुमको तो बताया है कि मेरा शरीर रहने पर 'स्वरूपशून्यमिव अर्थमात्र निर्भासं' समाधि हो जाती।

सेवक – आपने तो बहुत अच्छी बात कही।

महाराज – ये सब बौद्धिक बातें तो नहीं, अपितु अनुभूतियाँ हैं। इसीलिए ये ठीक नहीं, किन्तु बुद्धि-विचार से जो बातें होती हैं, उन्हें ठीक-ठीक नहीं कह सकता। इतनी सब बातें कहने में बहुत कष्ट होता है, अभी भी हो रहा है।

सेवक – मुझे ध्यान नहीं होता, क्यों? रुचिकर भी नहीं लगता। मेरी क्या वासना है?

महाराज – देहसुख या मान-सम्मान? इस समय सब दब गया है। यह तो जीवन नहीं है। मेरा शरीरान्त हो जाने पर युक्ताहार करके रहना, तब देखना, सब ठीक चलेगा।

सेवक – महाराज, इस समय किस भाव में रहते हैं?

महाराज – हमलोग तो साधारण व्यक्ति नहीं है, माँ के शिष्य हैं, माँ के बच्चे हैं। माँ के मुख की ओर देखते रहते हैं।

सेवक – हमलोग समय-समय पर जिस प्रकार का व्यवहार करते हैं, उससे हमलोगों के ऊपर क्रोध नहीं आता?

महाराज – अनुराग होता है। एक कार्य है – नियम है, उससे ही सब चल रहा है। कर्म का नियम तो जानते हो?

काशी में रहते समय सन् १९६४ ई. में महाराज का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा था, अच्छा कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि के स्तर पर वे थोड़ा सजग थे, यद्यपि शरीर के अन्य अंगों पर उनका स्वनियंत्रण नहीं था। १९६४ के बाद धीरे-धीरे उनका शरीर क्षीण होता गया और वे भी क्रमशः अन्तर्मुखी होते गए। सेवक कभी-कभी प्रश्न पूछकर उनसे उनका कुशल-समाचार जानने का प्रयास करता, किन्तु सेवक के प्रश्नों का उत्तर देने के उपयुक्त उनके शरीर की क्षमता और मन की इच्छा नहीं थी। तथापि सेवक को प्रसन्न करने के लिए वे बीच-बीच में दो चार बातें कहते।

महाराज – श्रीकृष्ण-चरित के सम्बन्ध में मैं अधिक कुछ नहीं बता सकूँगा। दो चार बातें तुमसे कहूँगा, तुम सुन लो। सर्वप्रथम वंश की बात – राम सूर्यवंश के, कृष्ण चन्द्रवंश के, युधिष्ठिर आदि भी वही थे। सूर्य–चन्द्र का युग्म मानो बाघ, सिंह। श्रीकृष्ण की जीवन-कथा से काट-छाँटकर, उनके आभूषणों, पोशाक को खोलकर वास्तविक मानव को बाहर निकालना होगा।

इसके बाद जन्म-कथा। वसुदेव राजा, देवकी रानी थी। वसुदेव को कारागार में क्यों रखा गया? सभी अत्याचारी राजा विरोधियों के भय से डरे रहते थे। ऐतिहासिक प्रमाण है हेरोद। इसीलिए गणना करके किसी के कुछ कहने पर ये सभी दुर्बल चित्त के राजागण बहुत घबड़ा जाते थे, इसीलिए जनश्रुति के आधार पर वसुदेव और देवकी को कारावास मिला।

बलराम कौन थे? वे कोई राजपुत्र नहीं थे, अपितु ग्वाले के पुत्र थे। उनके जीवन में कहीं भी राजोचित स्वभाव नहीं था। वे प्रचण्ड बलशाली और दुर्धर्ष नवयुवक, अतिशय प्रिय, मधुरभाषी, सुदर्शन कुमार और सभी के प्रिय थे। वे कृष्ण के सहोदर भाई नहीं थे, किन्तु दोनों का एक ही स्थान पर लालन-पालन हुआ था।

तत्कालीन अहीरों (ग्वालों) की दशा कैसी थी? रासलीला क्या है? श्रीकृष्ण गाँव के समवयस्क और प्रौढ़ महिलाओं के अतीव प्रिय थे। नेतृत्व क्षमतावाले श्रीकृष्ण सबको लेकर, दल बनाकर नाटक-अभिनय करते, भजन-कीर्तन करते, रास नामक प्रचलित एक खेल खेलते। राधा के नाम के किसी उल्लेख की कोई आवश्यकता ही नहीं है। यह परवर्ती ब्रह्मवैवर्त पुराण में दृष्टिगोचर होता है।

परवर्ती अध्याय में श्रीकृष्ण का द्वारका-गमन जरासंध वध, कुरुक्षेत्र और प्रभासतीर्थ का वर्णन है। **(क्रमशः)**

दान करते रहो, एक दिन परमहंस भी आयेंगे

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

एक महात्मा थे। उन्होंने अपने एक अनन्य भक्त से कहा – ''भैया! तुम अन्न का दान दिया करो।' उसने कहा – महाराज! किसे दान करें, सब कँगले इकट्ठे हो जाते हैं, कोई सत् पुरुष आवे, तो उन्हें भोजन कराने में प्रसन्नता भी होती है। यों ऐरे-गैरे पचकल्यानी भोजनभट्ट पेटुओं को भोजन कराने से क्या लाभ?''

महात्मा ने पूछा – ''अच्छा, तुमने कभी हंस को देखा है?''

भक्त ने कहा – ''नहीं, महाराज! मैंने कभी हंस के दर्शन नहीं किये? ''

महात्मा ने कहा – ''देखना चाहते हो?''

भक्त ने कहा – ''अवश्य देखना चाहता हूँ, यदि दिखायी दे जायें तो।''

महात्मा ने कहा – ''अच्छा, एक काम करो, तुम पक्षियों को नित्य नियम से अन्न डाला करो।''

महात्मा की बात भक्त ने स्वीकार की, वे नित्य पक्षियों को अन्न डालने लगे। पहले कौए आने लगे। उसने महात्मा से कहा – ''महाराज ! हंस तो आते नहीं, कौए-ही-कौए आते हैं।''

महात्मा ने कहा – ''तुम डालते जाओ।'' थोड़े दिनों में कबूतर आने लगे, मोर, दादुर, पपीहा, तोता, मैना आदि आने लगे। जहाँ दाना मिलता है, वहाँ की चर्चा पक्षी परस्पर करते ही हैं। एक दिन चार हंस मानसरोवर को जा रहे थे। सर्वत्र पक्षियों द्वारा उस चारे डालने वाले की प्रशंसा सुनकर उसे देखने की उनकी भी इच्छा हुई। इसीलिए वे भी अन्य पक्षियों के साथ वहाँ आकर दाना चुगने लगे। दाता बड़ा प्रसन्न हुआ। वह दौड़ा-दौड़ा महात्माजी के पास गया और बोला – ''महाराज जी! महाराज जी !! हंस आ गये, हमको हंसों के दर्शन हो गये।''

तब महात्मा जी ने कहा – ''सतत दान का यही फल होता है। इसी प्रकार तुम निर्धन, कंगाल, दीन-हीन भिखारियों को अन्न देते रहोगे, तो एक दिन तुम्हारे द्वार पर परमहंस सिद्ध पुरुष भी आ जायेंगे। तुम्हारा समस्त दान सफल हो जाएगा। एक भी सिद्ध पुरुष परमहंस आ गया, तो तुम कृतार्थ हो जाओगे। अत: भूखों को अन्न दान दिया करो।''

भक्त ने पूछा – ''भगवन् ! कितने पुरुषों को भोजन कराने के अनन्तर सिद्ध पुरुष के दर्शन हो सकते हैं ?''

महात्मा ने कहा – ''सवा लाख पुरुषों को भोजन करा दो तो भगवत् कृपा से तुम्हें सिद्ध पुरुष के दर्शन हो सकते हैं।''

भक्त सामर्थ्यवान् थे, उन्होंने कहा – ''मैं सवा लाख पुरुषों को भोजन कराऊँगा, किन्तु हमें सिद्ध का पता चलना चाहिए कि सिद्ध पुरुष आ गये। यों वेष बदलकर गुप्त रूप में भोजन कर गये, तो हमें क्या पता चलेगा कि सिद्ध आये या नहीं। हमें सिद्ध पुरुषों के प्रत्यक्ष दर्शन होने चाहिए।''

सन्त भी समर्थ थे, उन्होंने कहा – ''हाँ, तुम्हें सवा लाख पुरुषों को भोजन कराने पर सिद्ध पुरुष के अवश्य दर्शन होंगे, किन्तु किसी भी समय, किसी को अन्न से विमुख न जाने देना, जिस समय भी आकर जो तुमसे भोजन की याचना करे, उस समय ही उसे भोजन देना, इसमें प्रमाद न करना।''

भक्त ने कहा – ''इसकी पहचान क्या है कि सिद्ध पुरुष आ गये?''

महात्मा ने एक घण्टा देते हुए कहा – ''जिस समय यह घण्टा अपने आप बिना बजाये बजने लगे, तब समझो सिद्ध पुरुष आ गये।''

भक्त ने महात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वह सेवक सामग्रियों के साथ गंगातट पर जाकर बैठ गये। जो भी चाहे, भक्तजी के भण्डार में आकर प्रसाद पा ले। वे सदा भोजन तैयार रखते थे। कभी किसी को निराश विमुख नहीं जाने देते थे। आस्तिक श्रद्धालु थे, वे श्रद्धा से सबको भोजन कराते थे।

सवा लाख पुरुष प्रसाद पा गये, किन्तु घण्टी बजी नहीं, फिर भी उसकी अश्रद्धा नहीं हुई। सोचा – 'हमारे पूर्व जन्म के कोई ऐसे पाप होंगे कि सिद्ध पुरुषों के दर्शन नहीं हुए। अब घर चलना चाहिए।''

उन्होंने नौकरों से सामान बाँधने को कहा – सब समान छकड़ों में लद गया। सन्त की दी हुई वह घण्टी भी समानों

के साथ बाँधकर रख दी गयी। जिन बड़े डेकचों में चावल बनता था, उन्हें माँजकर गाड़ी में रखने लगे। उनके नीचे जला हुआ भात जमा हुआ था, उसे खुरचकर नीचे रख दिया गया। उसी समय एक पागल-सा पुरुष आया और बोला – ''सेठ जी ! भूख लगी है, कुछ खाने को दो।''

सेठ ने कहा – ''अरे बाबा आप तो बहुत देर से आये अब तो सब सामान बँध गया।''

पागल-से पुरुष ने कहा – ''कुछ भी दे दो।''

सेठ ने सामने पात्रों में से खुरचा हुआ जले हुए चावलों का ढेर देखा। उसी में से थोड़ा भात उठाकर उस पुरुष के हाथ पर रख दिया। उसने उसमें से चार चावल मुख में डाल लिये। चावल मुख में डालकर वह पुरुष चला गया। सेठजी ने आश्चर्य के साथ देखा, सामान में बँधी वह घंटी अपने आप बज रही थी, अब भक्त को चेत हुआ अरे, ये ही सिद्ध पुरुष थे। वह उनके पैर पकड़ने दौड़ा, थोड़ी देर तो वे जाते हुए दिखायी दिये फिर अन्तर्धान हो गये।

सेठ ने कहा – ''सिद्ध पुरुष के दर्शन तो हुए वह भी पृष्ठ भाग के, किन्तु चरणस्पर्श का सौभाग्य नहीं हुआ। चलो इतना ही मेरा सौभाग्य था।''

बात यह है कि सिद्ध पुरुष किस समय किस वेष में कब आ जायँ, इसका कोई निश्चय तो है नहीं। वे सभी रूपों में आ सकते हैं। अत: प्राणीमात्र में प्रेमभाव रखने के लिए शास्त्र की आज्ञा है। ○○○ (कष्टकारी क्षुधा से साभार)

पृष्ठ ६१२ का शेष भाग

सोशल मीडिया अकाउंट्स को सम्भालने के लिए चुना था।

मालविका को मार्च, २०१७ में न्यायॉर्क में संयुक्त राष्ट्र में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया।

मालविका ने २०१५ से कृत्रिम हाथ लगाना छोड़ दिया। अपने सामाजिक सेवा के अतिरिक्त वह लोगों को दिव्यांगता की और कई बातें समझाती है। वह कहती है कि body positivity (सकारात्मक शारीरिक छवि) का मतलब यह नहीं कि हम मोटे हैं या पतले हैं। Body positivity का अर्थ है कि हमारा शरीर चाहे जैसा भी हो हम उससे प्यार करें और उसे वैसा ही स्वीकार कर लें।

मालविका को घूमने-फिरने का, अच्छे कपड़े पहनने का बहुत शौक है, पर उसे यह बिल्कुल पसन्द नहीं की कोई पहली मुलाकात में उसकी दिव्यांगता पर दुख प्रकट करें। मालविका ने रैंप वॉक भी किया, जहाँ उसने कार्यक्षमता और शोली के साथ कपड़े डिजाइन करने की आवश्यकता पर बल दिया। उसे २०१५ में डेक्कन क्रॉनिकल द्वारा दशक के १०० परिवर्तन एजेंटों और समाचार निर्माताओं में से एक के रूप में मान्यता दी गई थी। २०१६ में वह न्यूयॉर्क में वर्ल्ड इमर्जिंग लीडर्स अवार्ड में पहली महिला प्राप्तकर्ता है। मालविका को अनेक सम्मान और पुरस्कार तथा कई प्रसिद्ध संस्थाओं के मंच से प्रेरक भाषण देने का अवसर मिला है।

तो बच्चो, इस प्रेरणादायी जीवन से हमें यह सीखने को मिलता है कि जीवन में यदि किसी अकस्मात् दुर्घटना से यदि हमारे शरीर के किसी अंग का कोई नुकसान हो भी जाये तो जीवन का अंत हो गया है, ऐसा न सोचकर अपने जीवन में लक्ष्य को ऊँचा रखकर पूर्ण लगन और परिश्रम द्वारा सफलता प्राप्त किया जा सकता है और दूसरों को भी सफलता के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जैसा कि डॉ. मालविका अय्यर ने किया। ○○○

कविता

परम भाव की सदा स्वामिनी

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

परम भाव की सदा स्वामिनी,ज्ञान-भक्ति की अनुपम धाम।
सकल विश्वकल्याणरता, हे सारदा अम्ब तुम्हें प्रणाम ।।
भवरोगों की क्लेशहारिणी, भक्त हृदय में विराजमान ।
मातृशक्ति की नित्यस्वरूपिणि, पावनता की हो अभिधान।।
शुभ्रकान्ति से सदा युक्त माँ, रामकृष्णगत तेरे प्रान।
करुणापूरित कमलनयन तव, करता दु:खताप अवसान ।।
जगतबन्ध को तुम्हीं काटती, शान्ति सुधा देती अविराम।
भक्तजनों की विपत्-नाशिनी,योगेश्वरि तुम सब सुखधाम ।।
योगेश्वर श्रीरामकृष्ण के, कार्यसिद्धि की तुम्हीं प्रमान ।
नित्य भगवती शान्तिस्वरूपिणि, तुम ही अखिल विश्व-वरदान।।
विश्ववन्दिता सुगुणभूषिता, माँ तुम ही वेदों की गान ।
सकलशक्ति अवतारस्वरूपा, मोक्षदायिनी परम महान ।।

स्वामी प्रभवानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज की स्मृति

''१९१२ ई. में स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने कनखल में दुर्गापूजा का अयोजन किया। मैं पूजा की छुट्टी में कनखल गया और वहाँ पर स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज का दर्शन हुआ। कनखल से वापस आते समय महाराज के आदेशानुसार मैं वृन्दावन गया और स्वामी तुरीयानन्द जी के परिचित एक वैष्णव साधु का पता लगाया। वे जंगल में एक कुटिया में रहते थे। मैं एक चिकना पथ से उनकी कुटिया में गया। साधु ने कुटिया से बाहर आकर दर्शन दिया। उनके शिष्यों ने एक चटाई बिछाकर उनको बैठने के लिए दिया और उन्होंने मुझे भी बैठने के लिए कहा। इन संन्यासी के सान्निध्य में मैंने प्रगाढ़ आध्यात्मिकता का अनुभव किया। मैंने उनको प्रणाम करके पूछा, ''महाराज, कैसे आपने इस उच्च अवस्था की प्राप्ति की है?'' उन्होंने एक वाक्य में मेरे प्रश्न का उत्तर दिया, ''नाम से।'' अर्थात भगवान के नाम-जप करके उन्होंने सिद्धि-लाभ किया है।

१९१४ ई. में मैं काशी गया और स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज से ब्रह्मसूत्र तथा शांकरभाष्य अध्ययन किया। मैं हरि महाराज के साथ ब्रह्म और माया को लेकर तर्क करता था। मेरा मस्तिष्क उस समय पाश्चात्य दर्शन के विचारधारा से भरा हुआ था। उनकी कक्षा में मैं पाश्चात्य दार्शनिकों की युक्ति उद्धृत करके उनके विचार का उल्लेख करता था। हमलोग कभी भी राजा महाराज के साथ तर्क नहीं करते थे। अन्यान्य तरुण संन्यासी मुझे दुर्विनीत मानते थे, किन्तु हरि महाराज कुछ भी खराब नहीं मानते थे तथा मुझे तर्क करने के लिए उत्साहित करते थे।

बाद में, जब मैं कोलकाता वापस आया, स्वामी अचलानन्द ने मुझे हरि महाराज के लिए अनेक नारियल डाब भेजने के लिए लिखा। मैंने डाब भेजा। उसे पाकर अचलानन्द ने लिखा ''हरि महाराज ने मुझे तुमको बताने के लिए कहा है कि कक्षा अभी उस प्रकार उत्साहपूर्ण नहीं हो रही है, क्योंकि सोत्साह कोई तर्क करनेवाला नहीं है।''

स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

''और एक बार मैं काशी में स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज को गीता अध्ययन कैसे होता है, इसके लिए पकड़ा। उन्होंने कहा, ''कल आना।'' अगले दिन उनके पास जाने पर उन्होंने कहा, ''गीता का एक श्लोक लो। कण्ठस्थ करो और प्रत्येक शब्द का अर्थ जानो। उस श्लोक के ऊपर ध्यान करो तथा एक सप्ताह तक उस श्लोक का अपने जीवन में अभ्यास करो। तत्पश्चात् परवर्ती श्लोक लो। मैंने इसी प्रकार गीता का अध्ययन किया है। This is my first and last class on the Gita for you." (तुम्हारे लिए गीता की यह पहली और अन्तिम कक्षा है।)

एक बार काशी अद्वैत आश्रम में एक संन्यासी श्रीमद् भावगत की व्याख्या कर रहे थे। स्वामी प्रेमानन्द, स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी आत्मानन्द और अन्यान्य संन्यासी चटाई पर बैठकर श्रवण कर रहे थे। उसी समय एक भक्त-महिला भागवत सुनने के लिए उसी चटाई के एक कोने पर आकर बैठी। आत्मानन्दजी उसके साथ-साथ ही पाठ-श्रवण छोड़ उठकर चले गये। बाद में किसी वरिष्ठ साधु से उसका कारण पूछने पर आत्मानन्दजी ने कहा, ''स्त्री लोग के साथ एक आसन पर बैठना निषिद्ध है।'' उनको जब कहा गया कि प्रेमानन्द, तुरीयानन्द महाराज उसी आसन पर कैसे बैठे हुए थे, तो इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा, ''वे लोग महापुरुष-परमहंस है। बाबुराम महाराज तथा हरि महाराज के एक-एक थप्पड़ से मेरे जैसे हजार शुकुल (आत्मानन्द) को ब्रह्मज्ञान हो सकता है। उनके साथ मेरी तुलना करना उचित नहीं है।''

काशी में एक बार एक संन्यासी (स्वामी निर्मलानन्द)

के साथ मेरा तर्क हुआ। उन्होंने कहा कि स्वामीजी विशिष्टाद्वैतवादी थे, अद्वैतवादी नहीं। हमारे बीच वाद-विवाद के विषय को स्वामी अचलानन्द ने स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज को बताया। उन्होंने मुझसे कहा, ''देखो, तर्क दो प्रकार से हो सकता है, एक विवेचन करके सत्य का निरूपण करने के लिए। यही वास्तव में तर्क है। दूसरा, जोर-जबरदस्ती करके अपना मत का स्थापन करने के लिए। यह सत्य के निरुपण करने का सही पथ नहीं है। वह साधु तुम्हारे साथ थोड़ा-सा मजा करके तर्क कर रहा था।''

१९१५ ई. में गुरुदास महाराज (स्वामी अतुलानन्द), सीतापति महाराज, मैं और एक ब्रह्मचारी बद्रीनाथ दर्शन करने के लिए गये थे। गुरुदास महाराज पाश्चात्य देशवासी थे। उस समय किसी पाश्चात्य देशवासी को हिन्दू देव-मन्दिर में प्रवेश करने नहीं दिया जाता था। हमलोग विग्रह दर्शन करने के लिए तीर्थयात्रियों के साथ बैठे हुए थे। उस समय एक गौरवर्ण युवा पुजारी ने मुझे संकेत करके बुलाया और कहा, ''तुम्हारे साथियों को लेकर मेरे साथ आओ।'' वे हमलोगों को मन्दिर के एक ओर ले आये, मन्दिर का द्वार खोला और हमलोगों को गर्भगृह में प्रवेश करा दिया। अन्य यात्रियों द्वार अन्दर आने पर उन्होंने कहा कि ''आपलोगों का समय अभी नहीं हुआ है।'' यह कहकर उन्होंने मन्दिर का द्वार बन्द कर दिया। तत्पश्चात् हमलोगों ने देखा कि वे विग्रह के पास खड़े हो गये। उस समय हमलोगों को यह विचार नहीं आया कि विग्रह के पास पुजारी का खड़ा होने का नियम नहीं है, वे विग्रह के सामने खड़े थे। कुछ मिनट के बाद उन्होंने कहा कि, ''तुमलोगों का अच्छी तरह से दर्शन हुआ तो? अब बाहर जाओ।'' हमलोगों के बाहर जाने पर उन्होंने भीतर से मन्दिर बन्द कर लिया।

हमलोग पुन: यात्रियों के बीच बैठे। उसी समय एक जन मुझे बुलाकर पुजारी के पास ले गया। उन्होंने गुरुदास महाराज के विषय में पूछा और कहा, वे गोरे रंग के हैं इसलिए उनको मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा। फिर भी उन्होंने बाहर से विग्रह दर्शन करने की व्यवस्था किया और हमारे लिए प्रतिदिन प्रसाद भेजते थे। सम्मानित अतिथि के रूप में हमलोग वहाँ पर तीन दिन थे। वहाँ पर रहते समय जितने पुजारी मन्दिर में थे, उनके साथ हमारा परिचय हुआ। किन्तु आश्चर्य का विषय है कि जो पुजारी हमलोगों को गर्भमन्दिर में ले गये थे उनको पुन: नहीं देख पाया।

बद्रीनाथ से मायावती जाने के रास्ते में हमलोग अलमोड़ा में रुके। स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज उस समय रामकृष्ण कुटीर में थे। हमलोगों ने उनको बद्रीनाथ में गर्भमन्दिर के भीतर किस प्रकार दर्शन हुआ बताया। यह सुनकर वे उत्तेजित होकर बोले, ''हाय ! हाय ! तुमलोग कितने मुर्ख हो ! ठाकुर को पहचान नहीं पाये? वे उस रूप में तुमलोगों के सामने आर्विभूत होकर तुमलोगों को गर्भमन्दिर में ले गये थे।'' **(क्रमश:)**

एक नाई और एक भगवद्-भक्त

स्वामी स्तवप्रियानन्द

एक नास्तिक नाई था। वह एक सज्जन का बाल काट रहा था। उसने बात करते हुये कहा – ''मैं, ईश्वर पर विश्वास नहीं करता हूँ।'' तब उन सज्जन ने पूछा – ''क्यों विश्वास नहीं करते हो?'' नाई ने कहा, ''चारों ओर मनुष्य को इतना कष्ट है ! इतना दुख है ! यदि वास्तव में कोई ईश्वर होता, तो मानवता की इतनी अवहेलना कैसे करता?'' तब उन सज्जन ने कहा – ''मैं भी नाई लोगों पर विश्वास नहीं करता हूँ।'' नाई ने पूछा – ऐसा क्यों? तब उन सज्जन ने सैलून के दरवाजे से बाहर की ओर संकेत करते हुए नाई को कहा – वे लोग जो मार्ग से जा रहे हैं, उनमें से देखो कई लोग सिर पर लम्बे-लम्बे बाल लेकर घूम रहे हैं। कितना खराब लग रहा है ! कितना अटपटा लग रहा है ! अगर नाई लोग सचमुच रहते, तो क्या ये लोग ऐसे खराब भेष में घूम सकते थे? नाई एक लम्बी साँस लेकर कहा – हमलोग तो हैं ही। यदि वे लोग हमारे पास न आयें, तो हम लोग क्या कर सकते हैं?

आस्तिक सज्जन ने उस नाई से कहा – मैं भी तो यही कहना चाहता हूँ। ईश्वर हमलोगों के बीच में ही हैं। यदि हमलोग उनके पास जाकर अपनी समस्या न बतायें, तो ईश्वर कैसे हमलोगों को मार्ग बतायेंगे?'' उनके पास चलकर जाना पड़ता है, सिर झुकाना पड़ता है, तभी तो अज्ञानरूपी सिर मुड़ाकर ज्ञान का मार्ग दिखा सकते हैं। कोई उनके पास नहीं जा रहा है, इसलिये चारों ओर इतनी अशान्ति, दुख और कष्ट दिखाई दे रहा है। (प्रेषक – स्वामी विश्वदेवानन्द)

समाचार और सूचनाएँ

अन्तर्राष्ट्रीय सभा का आयोजन

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में **रामकृष्ण मिशन, दिल्ली** में ४ अगस्त, २०२३ को 'विवेकानन्द सभागार' में एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा का आयोजन किया गया, जिसमें वयोवृद्ध राजनेता, विद्वान और चिन्तक डॉ. कर्ण सिंह, ढाका विश्वविद्यालय के विश्व शान्ति और संस्कृति विभाग के संस्थापक-अध्यक्ष डॉ. काजी नुरुल इस्लाम, प्रसिद्ध उद्योगपति, समाजसेवी और रामकृष्ण मिशन, दिल्ली की प्रबन्ध समिति के अध्यक्ष श्री लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, 'प्रबुद्ध भारत' के पूर्व

सम्पादक और वेदान्त सोसाइटी आफ वेस्टर्न के प्रभारी स्वामी सत्यमयानन्द जी, ढाका विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग की प्रो. अजीजुन नाहर और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द इंस्टिट्यूट ऑफ वैलूज, गुरुग्राम के सचिव स्वामी शान्तात्मानन्द जी ने सभा को सम्बोधित किया। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी ने की। आगत सभी अतिथियों का स्वागत रामकृष्ण मिशन, दिल्ली के सचिव स्वामी सर्वलोकानन्द जी ने किया। मास्को के रामकृष्ण सोसायटी वेदान्त सेन्टर की पूर्व सचिव डॉ. लिलियाना ने रिकार्डेड वीडियो के द्वारा सेमीनार को सम्बोधित किया। केन्द्रीय विदेश और संस्कृति राज्यमन्त्री श्रीमती मीनाक्षी लेखी ने अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित कीं। कार्यक्रम में आसपास के कई आश्रमों के प्रभारी सन्तों ने भाग लिया। कृष्ण मुरारी चट्टोपाध्याय ने भजन गाया, तबला-संगत सिद्धार्थ भट्टाचार्य ने किया। मंच-संचालन भास्कर रॉय और धन्यवाद-ज्ञापन जयन्त घोषाल ने किया।

युवा सम्मेलन का आयोजन

११ सितम्बर, २०२३ को **रामकृष्ण मठ, राजकोट** में शिकागो धर्म-सम्मेलन की स्मृति में एक युवा-सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें वेदान्त सोसाइटी, जिनेवा के नामित आध्यात्मिक मार्गदर्शक स्वामी वेदनिष्ठानन्द, सेक इसरो, अहमदाबाद के सह-निर्देशक अपूर्व भट्टाचार्य, गुजरात के प्रख्यात लेखक और शिक्षाविद् हर्ष ढोलकिया, एन.एच.आर.डी. नेटवर्क के अध्यक्ष हिमांशु भट्ट, सेक इसरो, अहमदाबाद के वैज्ञानिक कुश आर्य, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रति-कुलपति डॉ. चिन्मय पंड्या ने सभा को सम्बोधित किया। आश्रम के अध्यक्ष स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने सबका स्वागत किया। लगभग ४०० युवकों ने भाग लिया। सबको स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकों का सेट दिया गया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में सभाएँ हुई

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में ६ अगस्त, २०२३ को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में सभा आयोजित हुई, जिसमें डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, डॉ. रंजना शर्मा, डॉ. चितरंजन कर और डॉ. जया सिंह ने विभिन्न दृष्टिकोण से श्रीकृष्ण पर अपने विचार प्रकट किये। सभा की अध्यक्षता स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने की थी।

११ सितम्बर, २०२३ को विश्व भ्रातृत्व दिवस मनाया गया, जिसमें मुख्य अतिथि एवं प्रमुख वक्ता थे रामकृष्ण मिशन, कोझीकोड के सचिव स्वामी नरसिंहानन्द जी। वक्ता थे डॉ. ओमप्रकाश वर्मा। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने की थी।

वार्षिक अनुक्रमणिका
'विवेक-ज्योति' में वर्ष २०२३ ई. में प्रकाशित
लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

अग्रवाल विश्वास – (कविता) रामकृष्ण अवतार हुआ १३४,

अलोकानन्द स्वामी – माँ मुझे मनुष्य बना दो १०७, श्रीरामकृष्ण का आकर्षण १३७, १७७, २३१, ४२८, २९६, ३४४, ३९१, भारतीय शिक्षा का मूल तत्त्व ४६७, दुर्गा नाम क्यों? ५१३, काली का स्वरूप और रूप ५६१,

आत्मस्थानन्द स्वामी – प्रेममय स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ६२६,

आत्मश्रद्धानन्द स्वामी – युवाओं में विलक्षण सम्भवनाएँ और उनकी चुनौतियाँ – ९२,

आत्मानन्द स्वामी – चारित्र्य का बल ५८, गीतातत्त्व-चिन्तन (११/११) १५९ (११/१२) २०६, (११/१३) २३५, (११/१४) ३००, (११/१५) ३५१, (११/१६) ४००, (११/१७) ४४८, (१२/१) ४९१, (१२/२) ५३८, (१२/३) ५७३, (१२/४) ६२३

ओजोमयानन्द स्वामी – क्रोध से शान्ति की ओर ५६८, माँ सारदा कुटीर ६२२

ओरछा सुमित – (कविता) युवा संन्यासी विवेकानन्द ७८

उपाध्याय, पं. रामकिंकर – रामराज्य का स्वरूप (७/५) ५९, (८/१) १५३, (८/२) २०४ (८/३) २५२, (८/४) ३०२, (९/१) ३४८, (९/२) ३९८, (९/३) ४४५, (९/४) ४७४, (९/५) ५३५, (९/६) ५६५, (९/७) ६०९

एम.एस.नुनजुनडीह – स्वामी विवेकानन्द की स्वर-ध्वनि की रिकॉर्डिंग के सम्बन्ध में ४९७,

कृष्णामृतानन्द स्वामी – अबूझमाड़ के अरण्य से आ रहे विवेकानन्द के युवा १०५

गुणदानन्द स्वामी – शक्तिशाली, सन्तुलित और सफल युवक कैसे बने! १०२, (विवेकानन्द युवा प्रागंण) परिश्रम और दृढ़ संकल्प : सफलता के सोपान १४३, भारत की सशक्त बेटियाँ १९९, श्रेयांसि बहुविघ्नानि २३८, इच्छा-शक्ति को कैसे बढ़ायें २९१, रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल झलकारी बाई ४३४, शक्तिशाली जीवन के निर्माण में व्यक्तित्व विकास का महत्त्व ४७९, सबल और सशक्त युवा ५७६, उन्नत व्यक्तित्व और समाकलित जीवन का महत्त्व ५२६, जीवन में अनुशासन की आवश्यकता ६२०

गुप्ता राजकुमार – भतरौड बिहारी मन्दिर भगवान का लीलास्थान ३६९, धर्म, संस्कृति के संवाहक श्रीकृष्ण ४६५,

गोविन्द गिरि स्वामी – योग के सभी आयामों की प्रकाशक है गीता ३४०,

गौड़ रामकुमार – (कविता) जय रामकृष्ण नरदेव हरे १८८, रामकृष्ण प्रभु युग अवतार २४६, सदा शुभ हो ! सदा शुभ हो ! २८१

गौतमानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द : युवाओं के लिए शाश्वत प्रेरणा १२,

घोष चिन्मयी प्रसन्न – जो अन्नपूर्णा हैं वही माँ सारदा हैं ६१५,

घोष रीता – युवा जीवन में सत्संग का प्रभाव ३३७,

चित्रांशी प्रदीप – (कविता) बस चरणों में ही रहने दो ३५३

चूड़ीवाल अरुण – अध्यात्म रामायण में भगवान श्रीराम की स्तुति – ३२४,

चेतनानन्द स्वामी – साधुओं के पावन प्रसंग – (४९) १६२, (५०) २१०, (५१) २५५ (५२) ३०८, (५३) ३५४, (५४) ४०२, (५५) ४५१, (५६) ४९४, (५७) ५४६, (५८) ५९४, (५९) ६४१

चौबे उत्कर्ष – युवावर्ग व सोशल मीडिया की आदत १०९, शास्त्रानुसार दुर्गामहास्नान की नदियाँ ५२८, काली नाम साधना : तत्त्व विमर्श ५८०

जोशी मीनल – श्रीरामकृष्ण की नारियों के प्रति सहृदयता १५०,

तन्निष्ठानन्द स्वामी – युवकों की प्रेरिका : भगिनी निवेदिता ८०, माहेश की रथयात्रा और श्रीरामकृष्ण ३२१, रक्षाबन्धन ४१७

तिवारी आनन्द 'पौराणिक' – (कविता) जग में अनुपम स्वर्णिम भारत ६८, ढाई आखर बानी ३३९, गुरु पद कमल शत शत वन्दन ३७१, ओ वंशीवाले... ४७०, एक दीप जला दो ५६४,

त्रिपाठी डॉ. विजय प्रकाश – ज्ञान और भक्ति में अन्तर २४७,

दिव्यानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द का युवकों को शक्ति और निर्भयता का सन्देश ४३

दोदका लक्ष्मीनारायण – देवों के देव : महादेव शिव १२९

ध्रुवेशानन्द स्वामी – विवेकानन्द की कुमारी पूजा और

अलमोड़ा के यशोदा माई द्वारा पूजित चित्र ५२०,

नन्दकुमार प्रेमा – श्रीमाँ सारदा की दैवी करुणा २२५,

निखिलेश्वरानन्द स्वामी – अथ युवा-जिज्ञासा ११३,

नित्यपूर्णानन्द स्वामी – पूर्वोत्तर आदिवासियों की झोपड़ियों से निकल रहा नया भारत १००

नित्यज्ञानानन्द स्वामी – बनो और बनाओ – यही हमारा मूलमंत्र रहे ९०,

पररूपानन्द स्वामी – रामकृष्ण संघ : एक विहंगम दृष्टि २७३, ३२८, ३७९, ४२१, ४८१, ५४०, ५८८

परमार बाबूलाल – (कविता) वे माने जाने सन्त ५३४,

पाण्डेय व्यग्र – (कविता) गीता जीवन का आधार सखे ६३६

पूर्णानन्द स्वामी – श्रीरामकृष्ण गीता (१९) १४७, (२०) १८७, (२१) २४८, (२२) २९५, (२३) ३३९, (२४) ३८८, (२५) ४४४, (२६) ४७८, (२७) ५३४, (२८) ५८४, (२९) ६३६

प्रपत्त्यानन्द स्वामी – (सम्पादकीय) स्वामी विवेकानन्द के सर्वाधिक प्रिय और विश्वासी युवा शक्ति का आह्वान ७, कीर्तनानन्द में श्रीरामकृष्ण १२७, होली खेलत चन्द्रमणि लाल १७५, भारत माता के प्रेम-पाश में बँधे विवेकानन्द २२३, श्रीरामकृष्ण के चरणों में बैठने से ही भारत का उत्थान २७१, तपस्या की शक्ति और उसका उपयोग ३१९, मानसिक रोगों की औषधि : सद्गुरु की वाणी पर विश्वास ३६७, हम भारत की शान हैं ४१५, कूप-मण्डूकता का त्याग करो ४६३, देबि पूजि पद कमल तुम्हारे, ५११, काली ज्योति जले जन-मन में ५५९, दैनिक जीवन में गीता ६०७

प्रधान अवधेश – क्रान्तिकारी नौजवानों के आदर्श: शहीदे-आजम भगत सिंह ४७, विनोदप्रिय श्रीरामकृष्ण १५६, १९१, २४२,

प्रभानन्द स्वामी – रामकृष्ण मिशन का सेवाव्रत २७६,

बलभद्रानन्द स्वामी – युवाओं के सनातन प्रेरक विवेकानन्द ५२,

ब्रह्मचारी प्रभुदत्त – दान करते रहो, एक दिन परमहंस भी आयेंगे ६३९,

ब्रह्मेशानन्द स्वामी – युवावस्था : साधना की सर्वश्रेष्ठ अवस्था ७९,

बैरागी बालकवि – (कविता) इस महान देश को नया बनाओ रे ७५,

भाईजी श्रीमैथिलीशरण – राम-नाम का अमृत ६२८,

भार्गव अशोक – (कविता) हिन्द के जवानों का एक सुनहरा ख्वाब है ६८,

भूतेशानन्द स्वामी – आध्यात्मिक जिज्ञासा (८५) १४८, (८६) १८३, (८७) २४९, (८८) २९३,

मनराल मोहन सिंह – (कविता) शिव आए चलकर निज धाम ७०, अज्ञात संन्यासी से विश्वविजयी विवेकानन्द होने की यात्रा में अलमोड़ा का योगदान ३७४,

मिश्रा कल्पना डॉ. – बदलते परिदृश्य में युवाओं का चरित्र-निर्माण ७६, भारतीय साहित्य में श्रीराम चरित का प्रभाव १९५,

मुखोपाध्याय नवनीहरण – विद्यार्थी जीवन ही चरित्र-निर्माण का सर्वाधिक उपयुक्त समय ४५,

राघवेन्द्र शर्मा डॉ. – हमारे युवा ऋषि मुनि ३९,

राजेश्वरानन्द सरस्वती स्वामी – संत सखूबाई १३२,

वर्मा ओमप्रकाश डॉ. – (कविता) वीर विवेकानन्द विश्वगुरु ७५, आओ आओ रामकृष्ण प्रभु १३६, शिव-स्वरूप हो तुम वीरेश्वर १८८, वीर विवेकानन्द आ गये ३०७, मैं गाऊँ श्रीरामकृष्ण का... ३३९, गुरु हरते अज्ञान-तिमिर को ३८८, प्यारा भारत देश हमारा ४१९, कृष्ण प्रभू का यश-गायक हूँ ४६९, दुर्गा माँ का ध्यान करूँगा ५३९, काली काली मैं भजता हूँ ५८३, परम भाव की सदा स्वामिनी ६४०

वर्मा नम्रता – युवा-चेतना के विकास में सहायक पत्रकारिता के गुण ९८

वागीशानन्द स्वामी – युवा कर्तव्यनिष्ठ बने १६

विद्यानन्द ब्रह्मचारी डॉ. – लोकमान्य तिलक से विवेकानन्द के गीतोक्त कर्मयोग पर वार्तालाप पर वार्ता ६१३

विमलात्मानन्द स्वामी – युवा-शक्ति के आदर्श : वे दो युवक ६२,

विवेकानन्द स्वामी – उपनिषद के ऋषि की दृष्टि में युवा ऐसा हो ५, त्याग और प्रत्यक्षानुभूति का समय आ चुका है १२६, भारत में जो कुछ पवित्र, विशुद्ध, पावन है, वह सब 'सीता' शब्द में समाहित है १७४, तुम्हें शंकर का अनुसरण करना चाहिए २२२, सभी धर्मो के यथार्थ प्रेमी यहाँ (बेलूड़ मठ में) एकत्र होंगे २७०, मन की एकाग्रता को योग कहते हैं ३१८, बिना गुरु के तुम्हें ज्ञान नहीं होगा ३६६, उठो जागो और कितने दिन सोओगे? ४१४, सत्य के अभ्यास का साहस करो ४६२, हमारी नारियाँ अधिक पवित्र हैं ५१०, कुमारियों को धर्मपरायण और नीतिपरायण बनाना होगा ५५८, मानव-देहरूपी मन्दिर सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है ६११,

शंकराचार्य श्री – प्रश्नोपनिषद् (३२) १४२, (३३) १९०, (३४) २४०, (३५) २८९, (३६) ३२६, (३७) ३९७, (३८) ४२७, (३९) ४७७, (४०) ५२५ (४१)

५७९ (४२) ६२७,

शर्मा योगेशचन्द्र – होली : सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परम्परा १८५

शर्मा सत्येन्दु डॉ. – वेद, उपनिषद् और पुराणों का युवाओं के चरित्र-निर्माण में योगदान २९, (कविता) हमको दास बना लो २४६, (सूक्तम्) शिवचामरचर्या ४२५, कामाख्यासूक्तम् ५८३, मन:सूक्तम ६१९

शुक्ल बैजनाथ प्रसाद – (कविता) भगवति ! भारत एक हृदय हो ! ४१९

संवित् सोमगिरि स्वामी – युवा होने का अर्थ ७२

स्तवप्रियानन्द स्वामी – एक नाई और एक भगवत भक्त ६४२,

सत्यरूपानन्द स्वामी – युवकों के प्रश्न और स्वामी सत्यरूपानन्द जी के उत्तर १११, आप भला तो जग भला १६१, भगवान थे, हैं और रहेंगे २१२, ऐसा विश्वास करो कि मेरी पुकार ईश्वर सुनते ही हैं २५१, किसी से घृणा न करें २९०, हे प्रभु, हमारा जिसमें मगंल हो, वही करो ! ३३६, रामकृष्ण भावधारा से क्यों जुड़े हैं? ३८७, भगवान ने हमें आवश्यक सब कुछ दिया है ४२०, हृदय के विस्तार से मनुष्य का उद्धार ४७०, शरीर अनित्य और आत्मा नित्य है ५१६, सत्संग माने स्नान करके शुद्ध होना है ५७८, गुरु-मन्त्र में महान शक्ति है ६१८,

सागर शरद विवेक – युवा शक्ति के प्रेरणा-स्त्रोत ३३

सिंघानिया स्नेह – बाल-मन के स्वप्न व जेनरेशन गैप ५७,

सिंह मिताली – (बच्चों का आंगन) युवा-जीवन में सरस्वती पूजा का महत्त्व ६७, आत्मशक्ति का बोध १४१, भारत की पहली महिला गवर्नर १८९, क्रोध से अपना ही नाश २३०, बच्चों के राखालराज २८८, योग से बच्चों का सर्वांगीण विकास ३२७, (विवेकानन्द युवा प्रांगण) परिस्थितियों से हार न मानो ३८९, (बच्चों का आंगन) धीरज का अदम्य साहस ४२६, जीवन में शिक्षक का महत्त्व ४७१, महान पुरुष बनने का दृढ़ संकल्प ५१७, बिलासपुर नाम क्यों पड़ा? ५७२, असम्भव को सम्भव किया ६१२,

सिंह शैलेन्द्र कुमार प्रो. (डॉ.) – राष्ट्र-निर्माता युवाओं की शिक्षा कैसी हो ८६

सिंह संजय – शबरी की गुरु-भक्ति ३७८,

सिन्हा सदाराम 'स्नेही' – (कविता) सुख-दुख १८८, सुन लो मेरी पुकार ४६६,

सुपर्णानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र : वीर योद्धा ४३६, ४८७,

सुवीरानन्द स्वामी – स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा और युवाओं का चरित्र-निर्माण २३, रामकृष्ण मिशन का आदर्श, क्रियान्वयन और प्रभाव २८२,

सुहितानन्द स्वामी – हमें चाहिए : एक प्रगतिशील मानव परिवार १७, सारगाछी की स्मृतियाँ (१२३) १३५, (१२४) २०१, (१२५) २२८, (१२६) ३०५, (१२७) ३४२, (१२८) ३७२, (१२९) ४४१, (१३०) ४७२, (१३१) ५१८, (१३२) ५८५, (१३३) ६३७,

ज्ञानव्रतानन्द स्वामी – युवाओं के विकास हेतु आवश्यक सद्गुण : आज्ञापालन ६९,

अन्य संकलन

पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) – १२५, १७३, २२१, २६९, ३१७, ३६५, ४१३, ४६१, ५०९, ५५७, ६०५

लेख एवं प्रसंग – भगिनि निवेदिता द्वारा युवाओं का आह्वान (८४), युवाओं को प्रेरित करनेवाली सुभाषचन्द्र बोस की वाणी ८५,

स्तोत्र-भजनादि संकलन – स्वामी विवेकानन्द-स्तोत्रम्, उपनिषद के ऋषि की दृष्टि में युवा ५, श्रीश्रीरामकृष्णो जयति १२५, ब्रह्माजीकृत श्रीरामस्तुतिः १७३, श्रीरामकृष्णमहिमोद्गीतिः २२१, विवेकानन्द स्तुतिः २६९, श्रीरामकृष्णस्तुतिः ३१७, गुरु स्तुतिः ३६५, श्रीविवेकानन्द स्तुति ४१३, मुकुन्दाष्टकम् ४६१, दुर्गाष्टकम् ५०९, श्रीकालिका ध्यानम् ५५७, श्रीमदभगवत-गीता ध्यानम् ६०५,

पुस्तक समीक्षा – योग तत्त्व चिन्तन ४९९, मधु संचयन ६४६

समाचार और सूचनाएँ – ११५, १६७, २१३, २६२, ३१०, ३५८, ४०६, ४५५, ५०१, ५४९, ५९७, ६४३

वार्षिक अनुक्रमणिका (२०२३) – ६४४

पुस्तक-समीक्षा

मधु संचयन, संकलक – स्वामी तत्परानन्द, प्रकाशक – स्वामी शास्त्रज्ञानानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन लोकशिक्षा परिषद, रामकृष्ण मिशन आश्रम, नरेन्द्रपुर, कोलकाता – ७००१०३, फोन – ०३३-२४२७४५३७/५२८, पृष्ठ – १८२, मूल्य – ५०/-

प्रस्तुत पुस्तक 'मधु संचयन' भाग-१ रामकृष्ण संघ के चतुर्दश संघाध्यक्ष स्वामी गहनानन्द जी महाराज के पत्रों और लेखों से कुछ साधनोपयोगी सूक्तियों का संग्रह है, जो साधक जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह संचयन 'गहन आनन्द चिन्तन' से ली गई है, जिसका सम्पादन और संकलन स्वामी तत्परानन्द जी ने ही किया था। 'मधु संचयन' का प्रशंसनीय कार्य सम्पादन और संचयन स्वामी तत्परानन्द जी ने और संकलन में सहयोग सुरेन्द्र सिंह चौहान ने किया है। शीघ्र ही पुस्तक का भाग-२ और 'गहन आनन्द चिन्तन' का पुनर्संस्करण प्रकाशित होगा।